श्री अरविन्द कर्मधारा

परम प्रभु का सर्वांगपूर्ण यंत्र होने से बढ़कर कोई गौरव नहीं है।

श्री अरविन्द

15 अगस्त 2018 वर्ष 48 अंक 3

श्री अरविन्द कर्मधारा

श्री अरविन्द आश्रम-
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

15 अगस्त 2018

वर्ष-48 - अंक-3

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर फकीर`

सम्पादक

त्रियुगी नारायण

सहसम्पादन

रूपा गुप्ता

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, सुश्री रंगम्मा

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली शाखा (नि:शुल्क उपलब्ध) कृपया सब्सक्राइब करें-

sakarmdhara@gmail.com

कार्यालय

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली-शाखा

श्री अरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26524810, 26567863

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

दिव्य कर्म

सच्चा मोक्ष प्राप्त करना या पुनर्जन्म के बन्धन से सच्चा छुटकारा पाना यह नहीं कि पार्थिव जीवन का त्याग कर दिया जाये या व्यक्ति एक आध्यात्मिक स्व-विलोम के द्वारा जीवन से भाग जाये, जैसे कि सच्चा सन्यास यह नहीं है कि परिवार या समाज का केवल स्थूल रूप से त्याग कर दिया जाये। सच्चा मोक्ष उस भगवान के साथ आंतर तादात्म्य है जिसमें अतीत जीवन और भावी जन्म का कोई बन्धन नहीं है बल्कि इनके स्थान पर आज आत्मा की शाश्वत सत्ता है। गीता कहती है कि जो अन्दर से स्वतन्त्र है वह सभी कर्म करता हुआ भी कुछ नहीं करता; प्रकृति ही उसके अन्दर अपने स्वामी की आधीनता में कार्य करती हैं।

श्रीअरविन्द

इस अंक में...

1. **प्रार्थना और ध्यान** 5
   श्रीमाँ
2. **सम्पादकीय** 6
3. **श्री अरविन्दवाणी** 8
4. **पूर्ण यन्त्र** 9
   श्रीमाँ
5. **कारावास की कहानी** 10
   श्री अरविन्द

   पूर्ण-योग साधना का उद्देश्य
6. **पाकिस्तान** 18
   श्री सुरेन्दनाथ जौहर
7. **यद्यपि मेरे चारों ओर** 20
   रविन्द्रनाथ ठाकुर
8. **पुस्तक समीक्षा** 21
   डॉ0 के0 एन0 वर्मा
9. **सावित्री** 23
   विमला गुप्ता
10. **आयें प्रभु के द्वार** 27
    सुमित्रानन्दन पन्त
11. **चुप रहना** 28
    श्रीमाँ
12. **विनम्रता** 30
    श्रीमाँ
13. **माँ की पाठशाला** 33
    मृत्युंजय मुखर्जी, हिन्दी रूपान्तर: ज्ञानवती गुप्ता
14. **हमारे चाचा जी** 38
    संस्मरण

15. *'एक्शन बियांड हैल्प एंड सपोर्ट'* 45
डौली मंडल, हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता

16. *केचला ट्रिप* 47
रिपोर्ट पारुल दीदी (हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता)

17. *युवा शिविर* 50
रिपोर्ट: साक्षी ओबेराय, (हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता)
युवा शिविर संख्या 614
पिक्चर गैलेरी युवा शिविर न 614-624: वननिवास, नैनीताल

18. *आश्रम गैलरी* 53
तारा दीदी का जन्मदिन

19. *सूर्योदय स्कूल* 55
20. *प्रेरणायें* 56

श्री अरविन्द समाधि दिल्ली आश्रम

प्रार्थना और ध्यान

श्रीमाँ

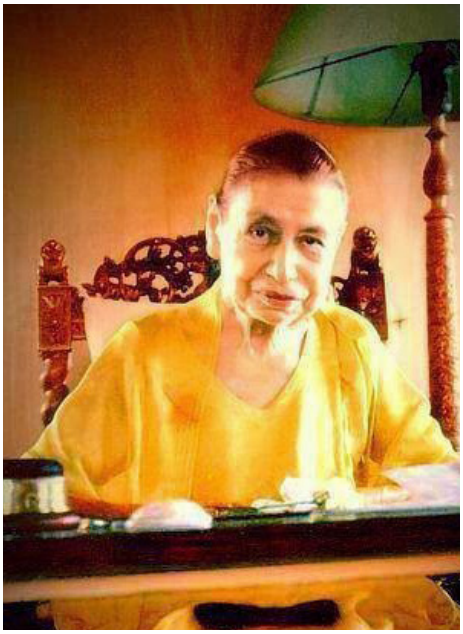

एक साथ मेरे अन्दर और तेरे कार्य में डूब जाना चाहिये.. अब एक सीमित व्यक्ति नहीं रह जाना चाहिये.. एक बिंदु के भीतर से अभिव्यक्त होने वाली तेरी शक्तियों का असीम आगार बन जाना चाहिये..सभी बन्धनों और सभी सीमाओं से विमुक्त हो जाना चाहिये.. समस्त बाधक विचारों से ऊपर उठ जाना चाहिये .. कर्म करना चाहिये और कर्म से परे चले जाना चाहिये, व्यक्तियों के द्वारा तथा व्यक्ति के लिये काम तो करना चाहिये पर एकमात्र एकत्व को, तेरे प्रेम, तेरे ज्ञान और तेरी सत्ता के एकत्व को ही देखना चाहिये। ऐ मेरे दिव्य प्रभु शाश्वत शिक्षक, एकमात्र सद्वस्तु! इस आधार के समस्त अंधकार को विलीन कर दे जिसे कि तूने अपनी सेवा के लिये, विश्व में अपने को अभिव्यक्त करने के लिये निर्मित किया है। इसके अन्दर उस परा-चेतना को प्रस्थापित कर जिससे सर्वत्र एक जैसी ही चेतना उत्पन्न होगी।

ओ, अब बाह्य रूपों को नहीं देखना जो निरन्तर बदलते रहते हैं; अब तो प्रत्येक चीज़ और प्रत्येक स्थान में एकमात्र तेरे अक्षर एकत्व को ही देखना है।

हे भगवान! मेरी सारी सत्ता अदम्य अनुरोध के साथ तुझे पुकारती है; क्या तू यह वरदान नहीं देगा कि मैं अपनी सम्पूर्ण चेतना में 'तू' ही बन जाऊँ? क्योंकि सचमुच देखा जाये तो मैं 'तू' हूँ और तू 'मैं' है।

सम्पादकीय

अखण्ड भारत के उद्घोषक: महर्षि अरविन्द

भारतीय स्वाधीनता संग्राम में श्री अरविन्द का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। उनकी पूरी जीवनी को संक्षेप में हम निम्न प्रकार से जान सकते हैं।

उनका जन्म 15 अगस्त, 1872 को डा.कृष्णधन घोष के घर में हुआ था। उन दिनों बंगाल का बुद्धिजीवी और सम्पन्न वर्ग ईसाईयत से अत्यधिक प्रभावित था। वे मानते थे कि हिन्दू धर्म पिछड़ेपन का प्रतीक है। भारतीय परम्पराएँ अन्धविश्वासी और कूपमण्डूक बनाती हैं। जबकि ईसाई धर्म विज्ञान पर आधारित है। अंग्रेजी भाषा और राज्य को ऐसे लोग वरदान मानते थे।

डा. कृष्णधन घोष भी इन्हीं विचारों के समर्थक थे। वे चाहते थे कि उनके बच्चों पर भारत और भारतीयता का जरा भी प्रभाव न पड़े। वे अंग्रेजी में सोचें, बोलें और लिखें। इसलिए उन्होंने अरविन्द को मात्र सात वर्ष की अवस्था में इंग्लैण्ड भेज दिया। अरविन्द असाधारण प्रतिभा के धनी थे। उन्होंने अपने अध्ययन काल में अंग्रेजों के मस्तिष्क का भी आन्तरिक अध्ययन किया। अंग्रेजों के मन में भारतीयों के प्रति भरी द्वेष भावना देखकर उनके मन में अंग्रेजों के प्रति घृणा उत्पन्न हो गयी। उन्होंने तब ही संकल्प लिया कि मैं अपना जीवन अंग्रेजों के चंगुल से भारत को मुक्त करने में लगाऊँगा। उनका बचपन घोर विदेशी और विधर्मी वातावरण में बीता; पर पूर्वजन्म के संस्कारों के बल पर वे महान आध्यात्मिक पुरुष कहलाये।

अरविन्द घोष ने क्रीन्स कॉलिज, कैम्ब्रिज से 1893 में स्नातक परीक्षा उत्तीर्ण की। इस समय तक वे अंग्रेजी, ग्रीक, लैटिन, फ्रेंच आदि 10 भाषाओं के विद्वान् हो गये थे। इससे पूर्व 1890 में उन्होंने सर्वाधिक प्रतिष्ठित आई.सी.एस. परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी। अब उनके लिए पद और प्रतिष्ठा के स्वर्णिम द्वार खुले थे; पर अंग्रेजों की नौकरी करने की इच्छा न होने से उन्होंने घुड़सवारी की परीक्षा नहीं दी। यह जान कर गुरुदेव रवीन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें **'स्वदेश की आत्मा'** की संज्ञा दी। इसके बाद वे भारत आ गये।

भारत में 1893 से 1906 तक उन्होंने बड़ोदरा (गुजरात) में रहते हुए राजस्व विभाग, सचिवालय और फिर महाविद्यालय में प्राध्यापक और उपप्राचार्य जैसे स्थानों पर काम किया। यहाँ उन्होंने हिन्दी, संस्कृत, बंगला, गुजराती, मराठी भाषाओं के साथ हिन्दू धर्म एवं संस्कृति का गहरा अध्ययन किया; पर उनके मन में तो क्रान्तिकारी मार्ग से देश को स्वतन्त्र कराने की

प्रबल इच्छा काम कर रही थी। अतः वे इसके लिए युवकों को तैयार करने लगे। अपने विचार युवकों तक पहुँचाने के लिए वे पत्र-पत्रिकाओं में लेख लिखने लगे। वन्दे मातरम्, युगान्तर, इन्दु प्रकाश आदि पत्रों में प्रकाशित उनके लेखों ने युवाओं के मन में हलचल मचा दी।

इनमें मातृभूमि के लिए सर्वस्व समर्पण की बात कही जाती थी। इन क्रान्तिकारी विचारों से डर कर प्रशासन ने उन्हें अलीपुर बम काण्ड में फँसाकर एक वर्ष का सश्रम कारावास दिया। कारावास में उन्हें स्वामी विवेकानन्द की वाणी सुनायी दी और भगवान् श्रीकृष्ण से साक्षात्कार हुआ। अब उन्होंने अपने कार्य की दिशा बदल ली और 4 अप्रैल, 1910 को पाण्डिचेरी आ गये। यहाँ वे योग साधना, अध्यात्म चिन्तन और लेखन में डूब गये। 1924 में उनकी आध्यात्मिक उत्तराधिकारी श्रीमाँ का वहाँ आगमन हुआ। 24 नवम्बर, 1926 को उन्हें विशेष सिद्धि की प्राप्ति हुई। श्री अरविन्द ने अनेक ग्रन्थों की रचना की। अध्यात्म साधना में डूबे रहते हुए ही 5 दिसम्बर, 1950 को वे अनन्त प्रकाश में लीन हो गये।

हर बार की तरह इस अंक में भी उनके लिखे महाकाव्य 'सावित्री' से कुछ अंश दिये जा रहे हैं। 'सावित्री' के विषय में माताजी ने कहा है:

'यदि तुम 'सावित्री' को ना भी समझ पा रहे हो तो भी उसे अवश्य पढ़ो। तुम्हें अनुभव होगा कि प्रत्येक बार जब तुम उसे पढ़ते हो तो एक नयी अनुभूति, एक नया बोध तुम्हारे अन्दर उद्घाटित हो जाता है, प्रत्येक बार तुम्हें उसमें एक नयी ज्योति की झलक मिलेगी। वे बातें जो पहले तुम नहीं समझ पा रहे थे, सहसा तुम्हारे समक्ष स्पष्ट रूप से अभिव्यक्त हो उठेंगी।'

साथ ही इस अंक में पूज्य चाचा जी श्री सुरेन्दनाथ जौहर के जन्मदिन पर उनके कुछ संस्मरण व तारा दीदी के जन्मदिन पर हम श्री मां के बारे में लिखी उनकी पुस्तक **'माता जी की छत्रछाया में'** की समीक्षा भी प्रकाशित कर रहे हैं।

दिल्ली आश्रम, मधुबन, वननिवास नैनीताल व केचला आश्रम की अन्य गतिविधियों से परिचित कराता यह अंक आशा है सुधि पाठकों के मानस को पसंद आयेगा। आपके विचारों और सुझावों का हम स्वागत करते हैं।

रूपा गुप्ता

श्री अरविन्दवाणी

सब धन तो भगवान का है और जिनके पास वह होता है वे तो केवल न्यासकारी ट्रस्टी हैं, अधिकारी नहीं। आज यह उनके पास है, कल यह दूसरी जगह हो सकता है। सब इस बात पर निर्भर करता है कि वे इस न्यास का निर्वाह, जब तक वह उनके पास है, किस तरह करते हैं, किस भाव से करते हैं, इसका व्यवहार किस चेतना से तथा किस उद्देश्य से करते हैं। धन के आकांक्षी अथवा अधिपति इसके अधिकारी नहीं, वरन् बहुधा इसके द्वारा अधिकृत होते हैं

तलवार ने यह नहीं कहा था कि मेरा निर्माण करो, ना वह प्रयोग करने वाले का प्रतिरोध करती है और ना ही टूट जाने पर शोक। परम प्रभु का सर्वांगपूर्ण यन्त्र होने से बढ़कर कोई गौरव नहीं।

समझौता तो एक सौदा है, दो विरोधी शक्तियों के बीच हितों का लेन-देन है; यह सच्चा मेल-मिलाप नहीं है। सच्चा मेल-मिलाप तो सदा एक ऐसी पारस्परिक समझ से आता है जो दोनों को एक प्रकार से घनिष्ठ एकत्व की ओर ले जाता है। आध्यात्मिक जीवन किसी निर्विशेष का नहीं वरन् सचेतन और बहुविशिष्टि एकत्व का प्रसून है।

केवल उच्चतम के प्रकाश और शक्ति से ही निम्नतम पूर्णरूप से संचालित, उन्नत और सुसम्पन्न हो सकता है।

ऐसा कोई नियम नहीं कि ज्ञान कठोर रूप से गम्भीर और मुस्कानरहित ही हो। मुस्कान आँसुओं से कहीं अधिक मूल्यवान सम्पत्ति है। विनोदप्रियता जीवन का स्वाद है।

मानव-विचार में किसी आदर्श का अभ्युदय बराबर ही प्रकृतिगत एक आकांक्षा का सूचक है; परन्तु सदा ही यह आकांक्षा सम्पन्न करने के लिए नहीं होती। क्योंकि प्रकृति अपनी पद्धतियों में बड़ी धीमी और धैर्यशील होती है।

साधारण मानवीय प्राण-प्रकृति के पंकिल पथ में मुलायम और दुर्बल मिट्टी होने की अपेक्षा भगवान के पथ में पत्थर होना कहीं अधिक अच्छा है। सतत आन्तरिक विकास के द्वारा ही कोई जीवन में अनवरत नवीनता और उसमें अखण्ड प्रवृत्ति प्राप्त कर सकता है।

मानवी सच्ची असभ्यता उसके आरम्भिक जीवन की असभ्यता नहीं, वरन् प्राक्कलीन जीवन की ओर पुनः लौट जाना है। साधारण वे नहीं जो अज्ञानी हैं, गरीब हैं, अनभिजात हैं अथवा जिनका पालन-पोषण ठीक से नहीं हुआ है; साधारणजन तो वे सब हैं जो क्षुद्रता से ही, साधारण मानव जीवन से ही सन्तुष्ट हैं।

पूर्ण यन्त्र

श्रीमाँ

जो कुछ दूसरे कर चुके हैं उसी को दोहराने के लिये हम यहाँ नहीं हैं। हम यहाँ एक नयी अभिव्यक्ति, एक नयी चेतना, एक नये जीवन के लिये अपने-आपको तैयार करने के लिये हैं। इसीलिये मैं तुम विद्यार्थियों से बातें कर रही हूँ –अर्थात् उन सबसे जो सीखना चाहते हैं, जो अधिक सीखना चाहते हैं, ज्यादा अच्छा सीखना चाहते हैं – ताकि एक दिन तुम अपने-आपको एक नयी शक्ति के प्रति खोल सको उसकी भौतिक स्तर पर अभिव्यक्ति को सम्भव बना सको। तुम्हें यह ना भूलना चाहिये कि यही हमारा कार्यक्रम है। अगर तुम यहाँ होने का सच्चा कारण समझना चाहते हो तो याद रखो हमारा लक्ष्य है यथासम्भव अधिक-से-अधिक ऐसा पूर्ण यन्त्र बनना जो संसार में भगवान् की इच्छा को प्रकट कर सके। और अगर यन्त्र को पूर्ण बनाना है तो तुम्हें उसे परिष्कृत और प्रशिक्षित करना होगा। तुम्हें उसे बंजर जमीन या अनगढ़ पत्थर के टुकड़े की तरह नहीं छोड़ देना चाहिये। हीरा अपना पूरा सौन्दर्य तभी दिखाता है जब उसे कलात्मक रूप से तराशा जाये। तुम्हारे साथ भी यही बात है। जब तुम यह चाहते हो कि तुम्हारी भौतिक सत्ता अतिमानसिक चेतना को अभिव्यक्त करने के लिये एक पूर्ण यन्त्र बन सके तो उसका पोषण करना होगा, उसे आकार देना होगा, सुसंस्कृत बनाना होगा। उसके पास जो नहीं है वह लाना होगा और जो है उसे पूर्ण करना होगा।

जब तक तुम कड़ी मेहनत नहीं करते तब तक तुम्हें शक्ति नहीं मिलती, क्योंकि तब तुम्हें उसकी जरूरत नहीं होती और तुम उसके अधिकारी नहीं होते। शक्ति तुम्हें तभी मिलती है जब तुम उसका उपयोग करते हो।

श्रीमाँ

कारावास की कहानी

श्री अरविन्द

(इस अनुवाद में जहाँ तक हो सका हमने श्रीअरविन्द की मूल बंगला पुस्तक के साथ-साथ चलने की कोशिश की है। -अनु.)

मैं पहली मई सन् 1908 ई., शुक्रवार के दिन 'वन्देमातरम्' के दफ्तर में बैठा था, तभी श्रीयुत श्यामसुन्दर चक्रवर्ती ने मुजफ्फरपुर का एक टेलीग्राम मेरे हाथ में थमाया। पढ़ कर मालूम हुआ कि मुजफ्फरपुर में बम फटा है जिससे दो मेमों की मृत्यु हो गयी है। उसी दिन के 'एम्पायर' अंग्रेजी अख़बार में यह भी पढ़ा कि पुलिस कमिश्नर ने कहा है – हम जानते हैं, इस हत्याकाण्ड में किन-किन का हाथ है और वे शीघ्र ही गिरफ्तार किये जायेंगे। तब मैं यह नहीं जानता था कि मैं ही था इस सन्देह का मुख्य निशाना- पुलिस के विचार में प्रधान हत्यारा, राष्ट्र-विप्लव-प्रयासी युवक दल का मन्त्र दाता और गुप्त नेता। नहीं जानता था कि आज का दिन ही होगा मेरे जीवन के एक अंक का अन्तिम पृष्ठ, मेरे सम्मुख था एक वर्ष का कारावास, इस समय से ही मनुष्य-जीवन के साथ जितने बन्धन हैं, सब छिन्न-भिन्न होंगे, एक वर्ष के लिए मानव समाज से अलग पशुओं की तरह पिंजरे में बन्द रहना पड़ेगा। फिर जब कर्मक्षेत्र में वापस आऊँगा तब वह पुराना परिचित अरविन्द घोष प्रवेश नहीं करेगा वरन्, एक नया मनुष्य, नया चरित्र, नयी बुद्धि, नया प्राण, नया मन ले और नये कार्य का भार उठा अलीपुर स्थित आश्रम से बाहर होगा।

कहा है एक वर्ष का कारावास पर कहना उचित था एक वर्ष का वनवास, एक वर्ष का आश्रमवास। बहुत दिनों से हृदयस्थ नारायण के साक्षात् दर्शन करने की प्रबल चेष्टा में लगा था; उत्कट आशा संजोये हुए था कि जगद्धाता पुरुषोत्तम को बन्धुभाव में, प्रभुभाव में प्राप्त करूँ। किन्तु संसार की सहस्त्रों वासनाओं के आकर्षण, नाना कर्मों में आसक्ति और अज्ञान के प्रगाढ़ अन्धकार के कारण कर ना पाया। अन्त में परमदयालु सर्वमंगलमय श्रीहरि ने इन सब शत्रुओं को एक ही वार में समाप्त कर उसके लिए सुविधा कर दी, योगाश्रम दिखलाया और स्वयं गुरु रूप में, सखा रूप में उस क्षुद्र साधन कुटीर में अवस्थान किया। वह आश्रम था अंग्रेजों का कारागार। मैं अपने जीवन में बराबर ही यह आश्चर्यमय असंगति देखता आ रहा हूँ कि मेरे हितैषी बन्धुगण मेरा जितना भी उपकार क्यों ना करें, अनिष्टकारी –शत्रु किसे कहूँ, मेरा अब कोई शत्रु नहीं

– शत्रुओं ने ही अधिक उपकार किया है। उन्होंने अनिष्ट करना चाहा पर इष्ट ही हुआ। ब्रिटिश गवर्नमेंट की कोप-दृष्टि का एकमात्र फल – मुझे भगवान् मिले। कारावास के आन्तरिक जीवन का इतिहास लिखना इस लेख का उद्देश्य नहीं है, कुछ एक घटनाओं को वर्णित करने की ही इच्छा है, किन्तु कारावास के मुख्य भाव का उल्लेख लेख के आरम्भ में ही करना उचित समझा, नहीं तो पाठक समझ बैठेंगे कि कष्ट ही है कारावास का सार। कष्ट नहीं था ऐसी बात नहीं, किन्तु अधिकांश समय आनन्द से ही बीता।

शुक्रवार की रात को मैं निश्चिन्तता से सो रहा था। सवेरे करीब पाँच बजे मेरी बहिन एकदम डरी-सी मेरे कमरे में आयी और मेरा नाम ले मुझे पुकारने लगी। मैं जाग पड़ा। क्षण-भर में मेरा छोटा-सा कमरा सशस्त्र पुलिस से भर गया; उनमें थे सुपरिटेंडेंट क्रेगन, 24 परगना के क्लार्क साहब, हमारे सुपरिचित श्रीमान् विनोदकुमार गुप्त की आनन्दमयी और लावण्यमयी मूर्ति और कई एक इंस्पेक्टर, लाल पगड़ियाँ, जासूस और खानातलाशी के साक्षी। हाथों में पिस्तौल लिये वे वीर-दर्प से ऐसे दौड़े आये मानों तोपों और बन्दूकों से सुरक्षित किले पर दखल करने आये हों। आँखों से तो नहीं देखा पर सुना कि एक श्वेतांग वीर पुरुष ने मेरी बहिन की छाती पर पिस्तौल तानी थी। बिछौने पर बैठा हुआ हूँ, अर्द्धनिद्रित अवस्था, क्रेगन साहब ने पूछा "अरविन्द घोष कौन हैं?" मैंने कहा, "हाँ, मैं ही हूँ अरविन्द घोष।" तुरन्त उन्होंने एक सिपाही को मुझे गिरफ्तार करने को कहा, उसके बाद क्रेगन साहब की किसी एक अश्लील बात पर क्षण-भर के लिए आपस में कहा – सुनी हो गयी। मैंने खानातलाशी का वारंट माँगा, पढ़कर उस पर सही की। वारंट में बम की बात देखकर समझ गया कि इस पुलिस सेना का आविर्भाव मुजफ्फरपुर में हुए खून से सम्बन्धित है। परन्तु यह समझ में नहीं आया कि बम या कोई विस्फोटक पदार्थ मेरे मकान में पाये जाने के पहले ही और बिना 'बॉडी-वारंट' के मुझे क्यों गिरफ्तार किया गया। तो भी इस बारे में व्यर्थ कोई आपत्ति नहीं उठायी। इसके बाद ही क्रेगन साहब के हुकुम से मेरे हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी बाँध दी गयी। एक हिन्दुस्तानी सिपाही वह रस्सी पकड़े मेरे पीछे खड़ा रहा। ठीक उसी समय श्रीयुत अविनाशचन्द्र भट्टाचार्य और श्रीयुत शैलेन्द्र वसु को पुलिस ऊपर ले आयी, उनके भी हाथों में हथकड़ी और कमर में रस्सी थी। करीब आधे घण्टे बाद, ना जाने किसके कहने से उन्होंने हथकड़ी और रस्सी खोल दी। क्रेगन की बातों में ऐसा लगता था मानों वह किसी खूंखार पशु की माँद में घुस आये हों, मानों हम थे अशिक्षित, हिंस्र और स्वभाव से कानून-भंजक, हमारे साथ भद्र व्यवहार या भद्रता से बात करना बेकार है।

परन्तु झगड़े के बाद साहब जरा नरम पड़ गये थे। विनोद बाबू ने मेरे बारे में उन्हें कुछ समझाने की चेष्टा की। उसके बाद क्रेगन ने मुझसे पूछा, "आपने शायद बी. ए. पास किया है? ऐसे मकान में, ऐसे सज्जाविहीन कमरे में जमीन पर सोये हुए थे, इस तरह रहना आप जैसे शिक्षित व्यक्ति के लिए क्या लज्जाजनक नहीं?" मैंने कहा, "मैं दरिद्र हूँ, दरिद्र की तरह ही रहता हूँ।" साहब ने तुरन्त गरजकर कहा, "तो क्या आपने धनी बनने के लिए ही यह सब षड्यन्त्र रचा है?" देश-हितैषिता, स्वार्थत्याग या दारिद्रय-व्रत का महात्म्य इस स्थूल बुद्धि अंग्रेज को समझाना असाध्य जान मैंने वैसी चेष्टा नहीं की।

इस बीच खानातलाशी चलती रही। यह सेवेरे साढ़े पाँच बजे आरम्भ हुई और प्रायः साढ़े ग्यारह बजे समाप्त हुई। बक्से के बाहर, भीतर जितना कापियाँ, चिट्ठियाँ, कागज, कागज के टुकड़े, कविताएँ, नाटक, पद्य, प्रबन्ध, अनुवाद – जो कुछ भी मिला, कुछ भी इन सर्वग्रासी खानातलाशियों के ग्रास से नहीं बच पाया। खानातलाशी के गवाहों में रक्षित महाशय क्षुण्णमना-से थे। बाद में बड़े दुःख के साथ उन्होंने मुझे बताया कि पुलिस अचानक बिना कुछ कहे-सुने उन्हें यहाँ घसीट लायी कि उन्हें योगदान करना होगा। रक्षित बाबू ने बड़े ही करुण भाव से हरण-काण्ड की कथा सुनायी। दूसरे साक्षी समरनाथ का भाव कुछ और ही था। उन्होंने बड़ी स्फूर्ति से एक सच्चे राजभक्त की तरह यह खानातलाशी का कार्य सुसम्पन्न किया मानों इसी के लिए जन्मे हों। खानातलाशी के समय और कोई उल्लेखनीय घटना नहीं घटी। पर याद आती है गत्ते के एक छोटे डिब्बे में दक्षिणेश्वर की जो मिट्टी रखी थी क्लार्क साहब उसे बड़े सन्दिग्ध चित्त से बहुत देर तक परखते रहे मानों उनके मन में शंका थी कि हो ना हो यह कोई नया, भयंकर, शक्तिशाली विस्फोटक पदार्थ है। एक तरह से क्लार्क साहब का सन्देह निराधार भी नहीं कहा जा सकता। अन्त में यह मान लिया गया कि यह मिट्टी के सिवा और कुछ नहीं, और इसे रासायनिक विश्लेषणकारियों के पास भेजना अनावश्यक है। खानातलाशी के समय बक्सा खोलने के सिवा मैंने और कुछ नहीं किया। मुझे कोई भी कागज या चिट्ठी दिखलायी या पढ़कर सुनायी नहीं गयी, केवल अलकधारी की एक चिट्ठी क्रेगन साहब ने अपने मनोरजंन के लिए उच्च स्वर में पढ़ी। बन्धुवर विनोद गुप्त अपने स्वाभाविक ललित पदविन्यास से घर को कंपाते हुए चक्कर काट रहे थे, शेल्फ में से या और कहीं से कागज या चिट्ठी निकालते, बीच-बीच में, "बहुत जरूरी बहुत जरूरी" कह उसे क्रेगन साहब को थमाते जाते। मैं जान नहीं पाया कि ये आवश्यक कागज क्या थे? इस बारे में कोई कौतूहल भी नहीं था क्योंकि मुझे पता था कि मेरे घर में विस्फोटक पदार्थ बनाने की

प्रणाली या षड्यन्त्र में हाथ होने का कोई भी सबूत मिलना असम्भव है।

मेरे कमरे का कोना-कोना छान मारने के बाद पुलिस हमें पास वाले कमरे में ले गयी। क्रेगन ने मेरी छोटी मासी का बक्सा खोला, एक-दो बार चिट्ठियों पर नजर भर डालकर "औरतों की चिट्ठियों की जरूरत नहीं" कह उन्हें छोड़ दिया। इसके बाद एकतल्ले पर पुलिस महात्माओं का आविर्भाव हुआ। वहाँ क्रेगन का चाय-पानी हुआ। मैंने एक प्याला कोको और रोटी ली। ऐसे सुअवसर पर साहब अपने राजनैतिक मतों को युक्ति तर्क द्वारा प्रतिपादित करने की चेष्टा करने लगे। मैं अविचलित चित्त से यह मानसिक यन्त्रणा सहता रहा। तो भी जिज्ञासा होती है कि शरीर पर अत्याचार करना तो पुलिस की सनातन प्रथा रही है, मन पर भी ऐसा अमानुषिक अत्याचार करना अलिखित कानून की चौहद्दी में पड़ता है क्या? आशा है हमारे परम मान्य देशहितैषी श्रीयुत योगेन्द्रचन्द्र घोष इस बारे में व्यवस्थापक सभा में प्रश्न उठायेंगे।

नीचे के कमरों और 'नवशक्ति कार्यालय' की खानातलाशी के बाद 'नवशक्ति' के एक लौह सन्दूक को खोलने के लिए पुलिस फिर से दोतल्ले पर गयी। आधे घण्टे तक व्यर्थ सिर फोड़ने के बाद उसे थाने ले जाना ही निश्चय हुआ। इस बार एक पुलिस साहब ने एक साईकिल ढूँढ़ निकाला, उस पर लगे रेलवे लेबल पर 'कुष्टिया' लिखा था। तुरन्त ही कुष्टिया में साहब पर गोली चलाने वाले का वाहन मान इसे एक गुरुतर प्रमाण समझ सानन्द साथ ले गये।

प्रायः साढ़े ग्यारह बजे हम घर से रवाना हुए। फाटक के बाहर मेरे मौसाजी एवं श्रीयुत भूपेन्द्रनाथ वसु गाड़ी में उपस्थिति थे। मौसाजी ने मुझसे पूछा, "किस अपराध में गिरफ्तार हुए हो?" मैंने कहा, "मैं कुछ नहीं जानता, इन्होंने घर में घुसते ही गिरफ्तार कर लिया, हाथों में हथकड़ी पहनायी, 'बॉडी वारंट' तक नहीं दिखाया।" मौसाजी के पूछने पर कि हथकड़ी पहनाये जाने का क्या कारण है, विनोद बाबू बोले, "महाशय, मेरा दोष नहीं, अरविन्द बाबू से पूछिये, मैंने ही साहब से कहकर हथकड़ी खुलवायी है।" भूपेन बाबू के पूछने पर कि क्या अपराध है, गुप्त महाशय ने नरहत्या की धारा दिखायी। यह सुन भूपेन बाबू स्तम्भित रह गये और कोई भी बात नहीं की। बाद में सुना, मेरे सॉलिसिटर श्रीयुत हरेन्द्रनाथ दत्त ने ग्रे स्ट्रीट में खानातलाशी के समय मेरी ओर से उपस्थित रहने की इच्छा प्रकट की थी पर पुलिस ने उन्हें लौटा दिया।

हम तीनों को थाने ले जाने का भार था विनोद बाबू पर। थाने में उन्होंने हमारे साथ विशेष भद्र व्यवहार किया। वहीं नहा-धोकर, खा-पीकर लालबाजार के लिए चले। कुछ घण्टे लालबाजार में बिठा रखने

के बाद रायड स्ट्रीट में ले गये। शाम तक उसी शुभ स्थान पर अपना समय काटा। वहीं जासूस-पुंगव मौलवी शम्स-उल् आलम के साथ पहला आलाप व प्रीति स्थापित हुई। मौलवी साहब का तब तक ना इतना प्रभाव था और ना उनमें इतना उत्साह और उद्यम था। बम-केस के प्रधान अन्वेषक या नॉर्टन साहब के Prompter (प्रेरक) या जीवन्त स्मरण-शक्ति के रूप में तब तक चमके रामसदय बाबू ही थे इस केस के प्रधान पण्डा। मौलवी साहब ने मुझे धर्म पर अतिशय सरस वार्ता सुनायी। उनके अनुसार हिन्दू-धर्म और इस्लाम धर्म का मूल-मन्त्र एक ही है, हिन्दुओं के ओंकार में तीन मात्राएँ हैं – अ उ म्, कुरान के पहले तीन अक्षर हैं – अ ल म, भाषातत्त्व के नियम से ल के बदले उ व्यवहृत होता है अतएव हिन्दू और मुसलमान का मन्त्र एक ही है तथापि अपने धर्म का पार्थक्य अक्षुण्ण रखना होता है, मुसलमान के साथ खाना खाना हिन्दू के लिए निन्दनीय है। सत्यवादी होना भी धर्म का एक प्रधान अंग है। साहब लोग कहते हैं कि अरविन्द घोष हत्याकारी दल के नेता हैं, भारतवर्ष के लिए यह बड़े दुःख और लज्जा की बात है, फिर भी सत्यवादिता अपनाने से स्थित सम्भाली जा सकती है। मौलवी का दृढ़ विश्वास था कि विपिन पाल और अरविन्द घोष जैसे उच्च चरित्रवान् व्यक्तियों ने चाहे जो भी किया हो, उसे मुक्तकण्ठ से स्वीकार करेंगे। श्रीयुत पूर्णचन्द्र लाहिड़ी वहीं बैठे थे, उन्होंने इस पर सन्देह प्रकट किया किन्तु मौलवी साहब अपनी बात पर अड़े रहे। उनकी विद्याबुद्धि और उत्कट धर्मभाव देख मैं अतिशय चमत्कृत और हर्षित हुआ। ज्यादा बोलना धृष्टता होगी यह सोच मैंने नम्र भाव से उनका अमूल्य उपदेश सुना और उसे सयत्न हृदयांकित किया। धर्म के लिए इतने मतवाले होने पर भी मौलवी साहब ने जासूसी नहीं छोड़ी। एक बार कहने लगे, "अपने छोटे भाई को बम बनाने के लिए आपने जो बगीचा दे दिया सो बड़ी भूल की, यह बुद्धिमानी का काम नहीं हुआ।" उनकी बात का आशय समझ मैं मुस्कुराया; बोला, "महाशय, बगीचा जैसा मेरा वैसा मेरे भाई का, मैंने उसे दे दिया है या दिया भी तो बम तैयार करने के लिए दिया, यह खबर आपको कहाँ से मिली?" मौलवी साहब अप्रतिभ हो बोले, "मैं कह रहा था यदि आपने ऐसा किया हो तो।" यह महात्मा अपने जीवन-चरित्र का एक पन्ना खोल, मुझे दिखाते हुए बोले, "मेरे जीवन में जितनी नैतिक या आर्थिक उन्नति हुई है उसका मूल कारण है मेरे बाप का एक अतिशय मूल्यवान् उपदेश। वे हमेशा कहा करते थे, परोसी थाली कभी नहीं ठुकराना। यही महावाक्य है मेरे जीवन का मूलमन्त्र, इसे सदा याद रखने के कारण ही हुई मेरी यह उन्नति।" ऐसा कहते समय मौलवी साहब ने ऐसी तीव्र दृष्टि से मेरी ओर घूरा मानों मैं ही

हूँ उनके सामने परोसी थाली। संध्या-समय स्वनामधन्य श्रीयुत रामसदय मुखोपाध्याय का आविर्भाव हुआ। उन्होंने मेरे प्रति अत्यन्त दया और सहानुभूति दिखायी, सभी को मेरे खाने और सोने का प्रबन्ध करने को कहा। अगले ही क्षण कुछ लोग आकर मुझे और शैलेन्द्र को मूसलाधार वर्षा में लालबाजार हवालात में ले गये। रामसदय के साथ बस यही एक बार ही मेरी बातचीत हुई समझ गया कि आदमी बुद्धिमान् और उद्यमी हैं किन्तु उनकी बातचीत, भावभंगिमा, स्वर, चलन, सब कुछ कृत्रिम और अस्वाभाविक है, हमेशा जैसे रंगमञ्च पर अभिनय कर रहे हों। ऐसे भी आदमी होते हैं जिनका शरीर, बात, क्रिया सब मानों अनृत के अवतार हों। कच्चे मन को बहकाने में वे पक्के हैं, किन्तु जो मानव चरित्र से अभिज्ञ हैं एवं बहुत दिनों तक मनुष्यों के साथ मिलते-जुलते रहे हैं, उनकी पकड़ में वे प्रथम परिचय में ही आ जाते हैं।

लालबाजार में दो तल्ले के एक बड़े कमरे में हम दोनों को एक साथ रखा गया। खाने को मिला थोड़ा-सा जलपान। कुछ देर बाद दो अंग्रेज कमरे में घुसे, बाद में पता चला कि उनमें से एक थे स्वयं पुलिस कमिश्नर हैलिडे साहब। हम दोनों को एक साथ देख हैलिडे सार्जेंट पर बरस पड़े, मुझे दिखाकर बोले, "खबरदार, इस व्यक्ति के साथ ना कोई रहे ना कोई बोले।" तुरन्त ही शैलेन्द्र को हटा दूसरे कमरे में बंद कर दिया गया और जब सब चले गये तो हैलिडे साहब मुझसे पूछते हैं – "इस कापुरुषोचित दुष्कर्म में भाग लेते हुए आपको शर्म नहीं आती?" "मैं इसमें लिप्त था यह मान लेने का आपको क्या अधिकार है?" उत्तर में हैलिडे ने कहा, "मैंने मान नहीं लिया, मैं सब जानता हूँ।" मैंने कहा, "क्या जानते हैं या क्या नहीं यह आपको ही पता होगा पर मैं इस हत्याकाण्ड के साथ अपना सम्पर्क पूर्णतया अस्वीकार करता हूँ।" हैलिडे ने और कोई बात नहीं की।

उस रात मुझे देखने और कई दर्शक आये, सभी पुलिस के। इनके आने में एक रहस्य निहित था, उस रहस्य की आज तक मैं थाह नहीं ले पाया। गिरफ्तारी से डेढ़ माह पहले एक अपरिचित सज्जन मुझसे मिलने आये थे, उन्होंने कहा था, "महाशय, आपसे मेरा परिचय नहीं है फिर भी आपके प्रति श्रद्धा-भक्ति है, इसीलिए आपको सतर्क करने आया हूँ और जानना चाहता हूँ कि कोननगर में किसी से आपका परिचय है क्या? वहाँ कभी गये थे या वहाँ कोई घर-बार है क्या?" मैंने कहा, "घर नहीं है, कोननगर एक बार गया था, कइयों से परिचय भी है।" उन्होंने कहा, "और कुछ नहीं कहूँगा पर कोननगर में अब और किसी से मत मिलियेगा, आप और आपके भाई बारीन्द्र के विरुद्ध दुष्टजन षड्यन्त्र रच रहे हैं, शीघ्र ही वे आप लोगों को

विपत्ति में डालेंगे। मुझसे और कोई बात ना पूछें।" मैंने कहा,

"महाशय, मैं समझ नहीं पाया इस अधूरे संवाद से मेरा क्या उपकार हुआ, फिर भी आप उपकार करने आये थे उसके लिए धन्यवाद। मैं और कुछ नहीं जानना चाहता। भगवान् पर मुझे पूर्ण विश्वास है, वे ही सदा मेरी रक्षा करेंगे, उस विषय में स्वयं यत्न करना या सतर्क रहना निरर्थक है।"

उसके बाद इस सम्बन्ध में और कोई खबर नहीं मिली। मेरे इस अपरिचित हितैषी ने मिथ्या कल्पना नहीं की थी, इसका प्रमाण उस रात मिला। एक इंस्पेक्टर और कुछ पुलिस कर्मचारियों ने आकर कोननगर की सारी बातें जान लीं। उन्होंने पूछा, "कोननगर क्या आपका आदि स्थान है? कोननगर में बारीन्द्र की कोई सम्पत्ति है क्या?"– इस तरह के अनेक प्रश्न पूछे गये। बात क्या है यह जानने के लिए मैं इन सब प्रश्नों का उत्तर देता गया। इस चेष्टा में सफलता नहीं मिली; किन्तु प्रश्नों से और पुलिस के पूछने के ढंग से लगा कि पुलिस को जो खबर मिली है वह सच है या झूठ इसकी छान-बीन चल रही है। अनुमान लगाया जैसे ताई– महाराज के मुकद्दमे में तिलक को भाण्ड, मिथ्यावादी, प्रवञ्चक और अत्याचारी करार कर देने की चेष्टा हुई थी एवं उस चेष्टा में बम्बई सरकार ने योग दे प्रजा के धन का अपव्यय किया था, वैसे ही मुझे भी कुछ-एक लोग मुसीबत में डालने की चेष्टा कर रहे हैं।

रविवार का सारा दिन हवालात में कटा। मेरे घर के सामने सीढ़ी थी। सवेरे देखा कि कुछ अल्पवयस्क लड़के सीढ़ी से उतर रहे हैं। शक्ल से नहीं जानता था पर अन्दाज़ लगाया कि ये भी इसी मुकद्दमे में पकड़े गये हैं, बाद में जान पाया कि ये थे मानिकतला बगीचे के लड़के। एक माह बाद जेल में उनसे बातचीत हुई। कुछ देर बाद मुझे भी हाथ-मुँह धोने नीचे ले जाया गया – नहाने का कोई प्रबन्ध नहीं था अतः नहीं नहाया। उस दिन सवेरे खाने को मिला दाल-भात, जबरदस्ती कुछ-एक कौर उदरस्थ किये, बाकी छोड़ना पड़ा। शाम को मिले मुरमुरे। तीन दिन तक यही था हमारा आहार। किन्तु इतना जरूर कहूँगा कि सोमवार को सार्जेंट ने स्वयं ही मुझे चाय और टोस्ट खाने को दिये।

बाद में सुना कि मेरे वकील ने कमिश्नर से घर से खाना भेजने की अनुमति माँगी थी पर हैलिडे साहब नहीं माने। यह भी सुना कि आसामियों से वकील या एटर्नी का मिलना निषिद्ध है। पता नहीं यह निषेध कानूनन ठीक है या नहीं। वकील का परामर्श मिलने से यद्यपि मुझे कुछ सुविधा होती फिर भी नितान्त आवश्यकता नहीं थी, किन्तु उससे अनेकों को मुकद्दमें में क्षति पहुँची। सोमवार को हमें कमिश्नर के सामने हाज़िर किया गया। मेरे साथ अविनाश और शैलेन

थे। सबको अलग-अलग दल में ले जाया गया। पूर्वजन्म के पुण्यफल से हम तीनों पहले गिरफ्तार हुए थे और कानून की जटिलता काफी अनुभव कर चुके थे और इसलिए तीनों ने ही कमिश्नर के आगे कुछ भी बोलने से इन्कार कर दिया। अगले दिन हमें थौर्नहिल मैजिस्ट्रेट की कचहरी में ले जाया गया। इसी समय श्रीयुत कुमारकृष्ण दत्त, मान्युएल साहब और मेरे एक सम्बन्धी से भेंट हुई। मान्युएल साहब ने मुझसे पूछा, "पुलिस कहती है आपके घर में अनेक सन्देहजनक चिट्ठी-पत्री मिली हैं। ऐसी चिट्ठियाँ या कागजात क्या सचमुच थे?" मैंने कहा, "निस्सन्देह कह सकता हूँ, नहीं थे, होना बिलकुल असम्भव है।" निश्चय ही तब 'मिष्ठान्न पत्र' (sweets letter) या scribbling (घसीट लेख) की बात नहीं जानता था। अपने सम्बन्धी से कहा, "घर में कह देना कि डरें नहीं, मेरी निर्दोषिता सम्पूर्णतया प्रमाणित होगी।" उस समय से ही मेरे मन में दृढ़ विश्वास उपजा कि यह होगा ही। पहले-पहल निर्जन कारावास में मन जरा विचलित हुआ किन्तु तीन दिन प्रार्थना और ध्यान में बिताने के फलस्वरूप निश्चल शान्ति और अविचलित विश्वास ने प्राण को पुनः अभिभूत किया।

पूर्ण-योग साधना का उद्देश्य

अपूर्णता में से हमें पूर्णता का निर्माण करना है, सीमांकन में से अनन्तता को पाना है, मृत्यु में से अमरता को खोजना है, दुःख में से भागवत आनन्द को प्राप्त करना है, अज्ञान में से भागवत आत्म ज्ञान का उद्धार करना है, जड़ भौतिक में से आत्मा को प्रकट करना है। अपने लिए और विश्व के लिए इस उद्देश्य को कार्यान्वित करना हमारी योग-साधना का उद्देश्य है।

पाकिस्तान

श्री सुरेन्दनाथ जौहर

भारतवर्ष के विभाजन के पश्चात् जब पाकिस्तान बना तो उससे मुझे बहुत अफ़सोस और दुःख हुआ क्योंकि हमारा वतन, मेरा जन्म-स्थान वहाली, जिला जेहलम गायब और खतम हो गया। मुझे अपने जन्म-स्थान गाँव और उसके आसपास के क्षेत्रों के साथ बहुत लगाव और प्यार था। वहाँ के पर्वतीय अंचल का सौन्दर्य वैभव विशिष्ट और अनोखा ही था। मैंने अपना बचपन अपनी दादी के पास व्यतीत किया और वहाँ के एक-एक चप्पे या जिन-जिन पत्थरों पर मैं पाँव रखता था और जिन पर चलता था वे मुझे भली भाँति अभी तक याद हैं। मैंने यह सब माताजी को कई अवसरों पर विस्तार से बतलाया और माताजी से कहा कि मैं अपनी जन्मभूमि को भुलाये नहीं भूल सकता और मेरे भीतर उसके लिये इतनी तड़प और आकर्षण है कि मैं हर समय उसी के सम्बन्ध में सोचता रहता हूँ।

एक दिन मैंने माताजी से कहा कि, "श्रीअरविन्द ने अपने 15 अगस्त के संदेश में बहुत ही स्पष्ट और निश्चित रूप से कहा है कि पाकिस्तान को तो समाप्त होना ही है और वह समाप्त होकर रहेगा! माताजी, अब तो कई महीने व्यतीत हो चुके हैं परन्तु पाकिस्तान के समाप्त होने के तो कोई आसार नहीं हैं। उसका कोई चिह्न तक दिखाई नहीं देता।" माताजी ने कहा कि, "मैं देखूँगी।"

इसके पश्चात् जब-जब भी मुझे अवसर मिलता, मैं माताजी को याद दिलाता रहा। माताजी हमेशा टाल जाती थीं और कोई उत्तर नहीं देती थीं।

जब कभी कोई मेरे मित्र श्रीअरविन्द आश्रम, पांडिचेरी आते और मुझे माताजी के पास ले जाने को कहते तो मैं उनको पहले से ही उकसा देता था कि जब आप माताजी से बात करें तो पाकिस्तान के सम्बन्ध में अवश्य पूछें कि वह कब समाप्त होगा। एक बार मेरे मित्र सरदार त्रिलोचनसिंह, जो एक पत्रकार थे, और दूसरी बार भिक्षु चमनलाल जोकि जीवनपर्यन्त जाने-माने 'हिन्दु अमेरिका' (Hindu America) के लेखक और प्रख्यात पत्रकार थे और पच्चीस साल तक 'हिन्दुस्तान टाइम्स' के संवाददाता (रिपोर्टर) रहे और अब जो बौद्ध भिक्षु बन गये थे, उन्होंने भी पाकिस्तान के सम्बन्ध में माताजी से कई बार भेंट की और उसके बाद दिल्ली आकर इस सम्बन्ध में एक पुस्तिका भी प्रकाशित की जिसमें यह

लिखा कि, 'माताजी से कोई निश्चित उत्तर नहीं मिला।'

मैं बहुत बेचैन रहा और माताजी से हमेशा इस बात के लिये पूछता रहा। एक दिन मैंने माताजी से कहा कि माताजी 15 अगस्त, 1947 के सन्देश में श्रीअरविन्द ने साफ़-साफ़ भविष्यवाणी की है और कहा भी है कि पाकिस्तान जरूर समाप्त हो जायेगा तो फिर यह क्या बात है कि श्रीअरविन्द की वाणी पूरी नहीं उतर रही है। माताजी कहने लगीं कि मैं श्रीअरविन्द से पूछकर बताऊँगी। दो-दो, तीन-तीन दिन के बाद मैं उनसे बराबर पूछा करता था कि माताजी आपने श्रीअरविन्द से पूछा है या नहीं।

हर बार वे कोई ना कोई बहाना लगाकर मुझे टाल देतीं। कभी कहतीं, "ओह, अफ़सोस है कि मुझे याद नहीं रहा और कभी कहतीं मुझे समय नहीं मिला।" एक बार कहने लगीं, "श्रीअरविन्द कार्य में बहुत व्यस्त थे मैं उनसे पूछ ही नहीं सकी।" आम तौर पर तो यही कह देती थीं कि, "मैं भूल गई।"

परन्तु मैं भी तो ढीठ पक्का था, उनका पीछा नहीं छोड़ा और आख़िरकार सन् 1949 में वे कहने लगीं, "मैंने गयी रात श्रीअरविन्द से पूछा था तो श्री अरविन्द ने कहा कि पाकिस्तान दस साल के अन्दर ख़तम हो जायेगा।" माताजी बड़ी होशियार थीं उन्होंने मुझे दस साल के लिये तो टाल दिया और चुप करा दिया।

परन्तु मैं कभी भूला नहीं। पाकिस्तान हमेशा मेरी चेतना में खटकता रहा। मैं एक-एक दिन और एक-एक महीना बड़ी बेसब्री से गिन रहा था कि ये दस साल कब ख़तम होंगे। इसी बीच में, मैं कई बार माताजी को याद दिलाता रहा कि दस साल में से इतना समय बीत चुका है। वे कहतीं, "हाँ, मैं जानती हूँ।"

आखिर एक दिन आया जबकि दस साल भी गुजर गये और मैं बड़े दुःख और गुस्से में भरा हुआ माताजी के पास पहुँचा। अब तो माताजी घिर गईं और बचने का कोई रास्ता ढूँढने लगीं। एकदम वे अपने दोनों हाथ बहुत ऊँचे उठाकर चिल्लाकर बोलीं, "कहाँ है पाकिस्तान! कहाँ है पाकिस्तान! मुझे तो पाकिस्तान कहीं दिखाई नहीं देता।"

अब मैं क्या कर सकता था! माताजी का भाव और उनकी प्रतिक्रिया ऐसी थी जिसे शब्दों में नहीं बतलाया जा सकता। मेरे पास और कोई चारा नहीं था। मुझे अपना-सा मुँह लेकर वापस आना पड़ा। मैं अपने गुरु के सामने कह भी क्या सकता था? वे इतनी मधुर और मान्या थीं कि...।

और कुछ वर्ष पश्चात् आधे से अधिक पाकिस्तान टूटकर और ख़तम होकर बंगला देश बन गया।

यद्यपि मेरे चारों ओर

रविन्द्रनाथ ठाकुर

यद्यपि मेरे चारों ओर धन-जन का जाल बिछा है,
फिर भी मेरा मन तुझे ही चाहता है–
यह तुझे पता है।

मेरे अन्तःकरण का निवासी होने से मेरे मन का भेद तू मुझसे
भी अधिक जानता है।
मैं सुख में रहूँ, दुःख में रहूँ,
सब कुछ भूले रहने पर भी मेरा मन तुझे ही
चाहता है – यह मुझे पता है।

मैं अपना अहंकार नहीं छोड़ सकता, उसे अपने माथे पर
लादे सारी दुनिया में भटकता रहा हूँ।
उसे छोड़ता तो सब पा जाता, किन्तु इस
सबके बीच मैं तुझे ही चाहता हूँ–
यह तुझे पता है।

मेरे पास जो कुछ है सब मुझसे कब लेगा?
सब त्यागकर ही मैं तुझसे मिल पाऊँगा
मेरा मन तुझे ही चाहता है –
यह तुझे पता है।

पुस्तक समीक्षा

डॉ0 के0 एन0 वर्मा

'माता जी की छत्रछाया में '(लेखिका तारा जौहर)

यह पुस्तक 'Growing up with the Mother' का हिन्दी अनुवाद है। यह सुन्दर अनुवाद श्री रवीन्द्र जी ने किया है जिन्हें हिन्दी भाषा पर विशेषकर श्री अरविन्द और माताजी के साहित्य का हिन्दी अनुवाद करने का गौरवपूर्ण अधिकार प्राप्त रहा है। यह केवल अनुवाद नहीं है बल्कि तारा जी के मूल अंग्रेजी लेखन की भावनाओं और माँ के प्रति समर्पण की मौलिक मिठास को बनाये रखने का स्वच्छ दर्पण भी है। इसे पढ़ने के बाद पाठक के भीतर कुछ बूँदे उस प्रेमानन्द की अवश्य ही टपकती हैं जिन्हें माँ की लाड़िली (घर का नाम लाडी) ने छक कर पिया है। माँ स्वयं कहती हैं- 'तारा मेरी लाड़िली बच्ची, तुम बहुत मधुर हो।' माँ की छत्रछाया में बढ़ना स्वयं भगवान् के दुलार में नहा-नहाकर बढ़ना, फूलना और फलना है। ऐसा सौभाग्य माँ के कई अन्तरंगों को प्राप्त हुआ है लेकिन तारा जी को उनकी प्रज्ञा, प्रतिभा और दायित्वों की गुरुता के अनुरूप ही माँ ने आश्रम में विशेष स्थान प्रदान किया। सन् 1/8/1971 को वे उन्हें नूतन जन्म देते हुये अपने विशेष सन्देश में कहती हैं- '27 वर्षों की प्रगति के विकास और उपयोगी कार्य ने तुम्हें आश्रम में एक विशेष स्थान और श्री अरविन्द का विशेष प्रेम प्रदान किया है और तुमने मेरा बहुत सारा प्रेम और सतत आशीर्वाद पाया है।'

सर्वांगीण शान्ति का बिल्ला प्रदान करते हुये माँ उन्हें बताती हैं- 'तुम्हारे हृदय के चारों ओर यह एक माला है। तुम्हारे हृदय में एक सितारा है जिसमें से प्रकाश की बारह किरणें फूट रही है... इसका अर्थ है ऐसी संभावना कि धरती पर शान्ति उतारने के लिये तुम्हें चुना गया है' । तारा जी को माता जी ने बहुत सी गोपनीय बातें भी बताईं जिन्हें किसी से ना कहने की हिदायत दी गई। 3 अगस्त, 1970 को माँ बताती हैं, 'मैंने तुम्हारी सत्ता के अन्दर सीधी खड़ी तुम्हारी चैत्य सत्ता को देखा जो तुम्हारे जीवन के उत्तरदायित्वों को लेने और तुम्हें प्रकाश और सत्य तक ले जाने के लिये प्रस्तुत है।'

श्री अरविन्द आश्रम दिल्ली के कार्यों का संचालन इन्हीं गुरुतर दायित्वों को निभाने के लिये ही श्रीमाँ ने तारा जी का चुनाव उक्त परख के बाद किया। श्री अरविन्द ने सावित्री में लिखा है कि भागवत् मुहूर्त में ऐसे ही यंत्रों की मानव देह में सत्य का उद्घाटन होगा

जिनके जीवन और व्यक्तित्व को भगवती माता मानव जन्म लेकर अपनी उँगलियों से गढ़ेगी –

'And God be born in human clay

In forms made ready by your human lives' (B11CI)

पुस्तक में कई प्रसंग ऐसे हैं जहाँ माँ का हहराता प्यार छलक कर ऊपर आ गया है। 6/12/59 की वह स्थिति कितनी रोमांचक अनुभूति कराती है जब लड़कियों द्वारा प्रश्न ना पूछने पर माँ जोर से डाँट लगाती हैं और बच्ची तारा के भीतर की अबोधता रो पड़ती है। उसके गाल पर आँसुओं की धार देखकर माँ की ममता करूणामयी होकर उसे बाँहों में भर लेती है और अबोध सरलता को छाती में चिपकाकर चूम लेती है। जिन आत्माओं के भीतर माँ के प्रति थोड़ा सा भी प्रेम है उन्हें यह प्रसंग गुदगुदाये बिना ना रहेगा। यह अकेला प्रसंग ही अभीप्सुओं के लिये आनन्द का समुन्दर है जिसमें प्रत्येक निश्छलता डुबकी लगाना चाहेगी।

तारा जी द्वारा पूछे गये प्रश्न रोचक होने के साथ अत्यन्त मार्मिक हैं। पुस्तक से यह पता चलता है कि माता जी के साहित्य संग्रह में पूछे गये अधिकतर प्रश्न इन्हीं के द्वारा पूछे गये थे। इन प्रश्नों में कुछ ऐसे भी रोचक प्रश्न हैं जिनका उत्तर ढूँढने में बड़े से बड़े साधक भी सिर खुजलायेंगे। यथा-

चैत्य परिवर्तन और आध्यात्मिक परिवर्तन में क्या अन्तर है?

मन को चुप रखकर अभीप्सा कैसे करें? क्या मन ही अभीप्सा नहीं करता?

भगवान् ने अपना मार्ग इतना कठिन क्यों बनाया?

जब आप (माता जी) सबेरे छज्जे पर आती हैं तो हमें क्या देती हैं?

अति प्रकृति या परा प्रकृति क्या है, आदि। यह पुस्तक चेतना की क्रमिक प्रगति का पूर्ण दस्तावेज है साथ ही भगवान् की कृपा और भरोसे का Solvation Testament' भी जिस पर माँ ने दूध से हस्ताक्षर किया है।

पुस्तक अनेकों उपयोगी छिपे रहस्यों का पर्दा खोलती है। यदि तारा जी नारियों के शरीर, उनके मासिक काल के क्रियाकलापों, उनके व्यायाम व शिक्षा पर खुलकर प्रश्न ना करतीं तो बहुत सारे प्रश्न आज तक अनुत्तरित रह जाते। शिक्षा, यौन शिक्षा, प्रमाण पत्र, अनुशासन, साधना के आयाम और फूलों के सन्देश जैसे विषयों पर थोड़े से शब्दों में यह पुस्तक बहुत कुछ कह जाती है। आशा है सुधी और अभीप्सु पाठक इस अनमोल धरोहर को अपने भीतर सहेजेंगे और आनन्दित होंगे

सावित्री

विमला गुप्ता

प्रभु का गुलाब

सावित्री ने अपनी 'आत्मा की खोज' में पड़ने वाली बाधाओं में से एक सर्वाधिक बड़ी बाधा को पार कर लिया है; वह अपनी आंशिक दिव्य शक्तियों एवं उनके अहंकारी विकृत रूपों से आगे बढ़ चुकी है। तब सावित्री एक रिक्त एवं घोर अन्धेरे प्रदेश से होकर गुजरती है और सहसा ही पूरी तरह स्वयं को शक्ति-सामर्थ्य से रहित महसूस करती है। कुछ ही क्षणों बाद उसे एक परिवर्तन का आभास होता है और उसे अपने लक्ष्य के निकट पहुंचने की कुछ आनन्दप्रद अनुभूति होती है। अन्ततः वह अपनी आत्मा के साहचर्य में आ जाती है :-

वे दोनों इस प्रज्जवलित एवं प्रकाश प्रभा कक्ष में परस्पर मिलीं,

उन्होंने एक-दूसरे को देखा और स्वयं को जाना,
वह थी गुह्य 'दिव्यता' और यह उसका मानवी अशं,
वह प्रशान्त 'अमरता' और यह संघर्षशील जीव-सत्ता,
तब तक जादुई रूपान्तरकारी गति से
वे एक-दूसरे की ओर झपटीं और
एक-दूसरे में समा गईं।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 527)

अब यहाँ सावित्री में, मूल मातृशक्ति कुंडलिनी-जागरण का विविध विवरण हम पाते हैं:-

अचेतन की आत्महीन, मनहीन 'महानिशा' से निकल
एक जाजल्यमान सर्प, नींद से जागकर उठा।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 528)

तब एक के बाद दूसरा, इस प्रकार षष्ठ चक्र – सहस्रार चक्र, आज्ञा चक्र, विशुद्धि चक्र, अनाहत चक्र, स्वाधिठान चक्र एवं मूलाधार चक्र- उन कमलों की तरह खुलते गये जैसे प्रथम सूर्य-किरण का स्पर्श पाकर वे खिल जाते हैं। अब सावित्री की समूची सत्ता दिव्य शक्ति और अलौकिक आनन्द का वर्णन निम्न पंक्तियों में करते हैं :-

ओ आत्मा, मेरी आत्मा ! हमने किया है 'स्वर्ग' का सृजन
हमने अपने भीतर ढूँढ लिया है महान् प्रभु का राज्य,
'उसके दुर्ग बने हुए हैं एक विशाल अज्ञानी विश्व में,...
'प्रकाश' की दो सरिताओं के बीच हमारा जीवन एक समतल भूमि है,

हमने अन्तरिक्ष को शान्ति की घाटी में
बदल दिया है
और देह को आनन्द की राजधानी,
एक मूर्त मन्दिर बना लिया है
और अधिक क्या, अधिक क्या? यदि
अभी कुछ करना और शेष है कर लेना
चाहिए।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 531)

और निम्नलिखित पंद्याश में कवि की अपनी टिप्पणी है आन्तरिक रूपान्तर की उस अवस्था पर, जो सावित्री ने प्राप्त कर ली है :-

एक मन्दिर का निर्माण हुआ जहाँ
उच्चदेव कर सकेंगे वास।
यदि इस समूचे संघर्षरत विश्व को एक
ओर छोड़ दें
तो भी एक मानव की 'परिपूर्णता' कर
सकती है विश्व की रक्षा
उच्चलोकों से एक नयी घनिष्ठता हो गई
है उपलब्ध
मानवीय कालक्रम में भगवान का एक
शिविर हो गया है गठित।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 531)

सावित्री अब मानवता के उन्नयन एवं रूपान्तर के लिए, प्रभु का एक शिविर, एक वास-स्थान और एक मन्दिर बन चुकी है। पूरी सृष्टि मानो इस परिवर्तन में शरीक होने लगती है जो सावित्री से निःसृत हुआ है। उसके सामान्य से दैनिक कार्यों में भी गुणवत्ता आ गई है, एक अधिक महत् एवं प्रगाढ़ प्रेम ने उसे सत्यवान से जोड़ दिया है। लेकिन अभी तक सावित्री की अन्तर्यात्रा का अन्त नहीं हुआ है। एक दिन सहसा उसके हृदय में एक अप्रत्याशित भय एवं घना अँधेरा उमड़ आता है। वह एक कड़क आवाज सुनती है :-

मैं 'मृत्यु' हूँ और जीवन की काली
भीषण 'माता'
मैं काली हूँ अनावृत हूँ इस जगत में
मैं माया हूँ और विश्व मेरा छलावा है
मैं अपनी श्वासों से ही मानवीय खुशियों
को व्यर्थ कर देती हूँ।

(पर्व 7, सर्ग 6, पृष्ठ 535)

कैसे कोई 'काल' और 'भाग्य' 'मृत्यु' की पकड़ से ऊपर उठ सकता है? तब एक अन्य आवाज उसे सलाह देती है कि मृत्यु को अतिक्रमण करने का एक ही उपाय है कि आत्मा से विलगता का जो भावप्रवण कोष है, उसे त्याग दिया जाय और सर्वोच्च 'प्रभु' की जो शून्यता है उसे सहमति दी जाय। उस समय भी जब कोई आध्यात्मिक आनन्द में डूबा होता है, यदि उस आनन्द के अनुभव को पृथक भाव से अनुभव कर रहा होता है और उसके प्रति जागरूक होता है, तो भी मृत्यु वहाँ प्रवेश कर सकती है। इसलिए वह आवाज़ सावित्री को सतर्क करती है :-

अपने हर विचार का परित्याग कर और
प्रभु का 'शून्य' बन जा

अब तू उस 'अनभिज्ञ' को अनावृत कर लेगी
किसी भी बात को सहमति ना दे,
'काल' के क्रम को घुल जाने दे
अपने मन को निकाल फेंक, अपने नाम और रूप के पीछे हट जा
'एकमेव' बन जा जैसे कि केवल प्रभु हो सकते हैं।

(पर्व 7, सर्ग 6, पृष्ठ 537-38)

अपनी सर्वोच्च आध्यात्मिक विजय और पूर्णता के मुहूर्त पर अहं का रंच-मात्र बोध ना होना, यही वह माँग है जो सावित्री से की गई है। वह आत्म रिक्तता की अवस्था पा लेती है और एक ऐसी स्थिति में पहुँच जाती है जहाँ ना कोई कर्ता है जो देखता है और ना विषय है जो देखा जाता है। एक आकृति-विहीन मुक्ति उसमें समाहित हो जाती है और वह अनन्तता में विलय हो जाती है। यह 'निर्वाण' का अनुभव है और 'निर्गुण ब्रह्म' का अनुसन्धान कर लेना है :-

इस अनन्त 'महाशून्य' में ही अन्तिम संकेत निहित था
अथवा वह जो वास्तविक है, वह 'अज्ञेय' ही बना था
उस एक 'एकमेव ब्रह्म' में सब कुछ रिक्त कर दिया था
उसने मिटा दिया था यह अज्ञानी विश्व अपने एकाकीपन से
और आत्मा को अपनी सनातन शान्ति में समेट लिया था।

निर्वाण का यह अनुभव सावित्री में, एक रिक्त चेतना, जो सबसे रहित है, केवल एकमात्र अनावृत सत्य ले आता है। एक निर्व्यक्तिक रिक्तता उसमें संचार करने लगती है और वह ऐसे चलती-फिरती है जैसे 'प्रभु' की व्यापकता में घूम रही हो। उसका भौतिक अहंकार प्रभु की निशा में घुल गया है। यह अवस्था उसमें पूर्ण समर्पण की भावना ले आती है। महाकवि उसके विषय में ऐसे बयान करते हैं जैसे वह बिना परिधि का कोई वृत्त हो। वहाँ ना कोई व्यक्ति शेष रहा था, ना केन्द्रित मन। सावित्री धीरे-धीरे इन सब अनुभवों को पाती हुई अपनी नियति की उस महान् घड़ी का सामना करने के लिए तैयार की जा रही है जब सत्यवान मृत्यु के द्वारा आहत होगा। लेकिन सावित्री अब उस आने वाले संकट से चिंतित नहीं है। एक पत्नी और एक नारी, जो कि सावित्री थी, अब एक निर्व्यक्तिक आध्यात्मिक शक्ति-पुँज में रूपान्तरित हो गई है। वह पानी की एक बूँद की तरह सागर में मिल गई है। लेकिन यह समूची 'नकारात्मकता' उस परम ब्रह्म का सम्पूर्ण अनुभव नहीं है। यह 'नकारात्मकता' केवल वह ठोस धरातल है जिस पर उस आदि कर्ता का बहुमंजिला भवन टिका हुआ है।

एक दिन सावित्री को 'सगुण ब्रह्म' के महान् अनुभव से परिपूर्ण होना है :-

अब वह अवास्तविक जगत् कहीं हो गया था लोप
मन द्वारा सिरजी गई सृष्टि नहीं रह गई थी शेष
अब वहाँ निराकार एवं साकार ब्रह्म का आनन्द सर्वत्र व्याप्त था
वहाँ 'एकमेव परमप्रिय' के हाथ थे और 'प्रेम' ही सर्वस्व था
सर्वदृष्टा मन का एक ही दृश्य था और विचार था
प्रभु के उच्चतम शिखरों पर अपने विद्यमान होने का आह्लाद था
सावित्री की आत्मा ने विश्व को जीवन्त प्रभु के रूप में देखा
सर्वत्र उसी 'अखिल ब्रह्म' को देखा और अनुभव किया, सब कुछ 'वही' था।

इस विशाल अन्तर्दर्शन से सावित्री को अपने अन्दर एक गहन परिवर्तन की प्रतीति होती है। उसे महसूस होता है कि उस परम सत्ता में वह अनन्त के साथ एक हो गई है। स्वयं 'वही' बन गई है... उसी बिन्दु पर पहुँच गई है जो सीमातीत है, अनुभावातीत है :-

वही वृक्ष और फूल का एक अवचेतन जीवन बन गई थी,
वसन्त की मधुमयी कलियों का वही प्रस्फुटन थी,
वह गुलाब की शोभा और अनुराग में दीपित थी,
अनुरागी पुष्पों का वह रक्तवर्ण हृदय थी,
सरोवर में खिले कमलों का स्वप्निल श्वेत रूप थी,
पूरा विश्व उसके हृदय में पुष्प सा खिला था, वह उसकी शैया थी
वह स्वयं 'समय' थी और समयबद्ध प्रभु का स्वप्न थी
वही अन्तरिक्ष थी और उसकी परिधियों की व्यापकता थी
'अनन्तता' उसकी गतियों की नैसर्गिक जगह थी
और शाश्वतता उसके द्वारा 'समय' को देखती थी।

(पर्व 7, सर्ग 7, पृष्ठ 557)

अब सावित्री अपनी आन्तरिक खोज के अन्तिम मुहाने पर आ पहुँची हैं। हर्षावेगों, अन्तर्दर्शनों और विद्युत संचालित परिवर्तन उसमें एक के बाद दूसरे आते गये हैं और वह सरल, सादी, सुन्दर, सावित्री जान लेती हैं कि वास्तव में वह 'कौन' है- 'प्रभु का गुलाब' । अब वह मृत्यु का सामना करने के लिए तैयार है।

आयें प्रभु के द्वार

सुमित्रानन्दन पन्त

आयें प्रभु के द्वार!
हतभोग, हताश, शक्ति है,
काम क्रोध मद में आसक्ति है,
आयें वे, आयें वे प्रभु के द्वार!

बहती है जिनके चरणों में पतितपावनी धार!
जो भू के, मन के वासी हैं,
स्त्री धन जन यश फल आशी हैं,
आयें वे, आयें वे प्रभु के द्वार!

प्रभु करुणा के, महिमा के हैं मेघ उदार!
पथिक ना जो आगे बढ़ सकते
सुख में थकते, दुःख में थकते,
टेढ़े मेढ़े कुंठित लगते,
आयें वे, आयें वे प्रभु के द्वार!

पूर्ण समर्पण करदें प्रभु को, लेंगे सकल सँवार!
सब अपूर्ण खण्डित इस जग में,
फूलों से काँटे ही मग में,
मृत्यु साँस में, पीड़ा रग में,

आयें वे, आयें वे प्रभु के द्वार!
केवल प्रभु की करुणा ही है अक्षय, पूर्ण, उदार!
आयें प्रभु के द्वार!

चुप रहना

श्रीमाँ

वैयक्तिक विकास के दृष्टिकोण से और उन लोगों के लिय जिन्होंने अभी मार्ग पर चलना आरम्भ ही किया है एक ऐसी वस्तु के सामने चुप रह सकना जिसे वे नहीं समझते एक ऐसी बात है जो उन्नति-पथ पर अत्यधिक सहायक होती है। आवश्यकता है चुप रहना जानने की, केवल बाह्य रूप से ही नहीं कि शब्द ना बोले जाये बल्कि अन्दर भी शान्त रहना जानना चाहिये जिससे कि मन अपने अज्ञान पर अहंकारवश आग्रह ना करे जैसाकि वह करता है, ना ही वह उस यन्त्र की सहायता से समझने की कोशिश करे जो समझने में असमर्थ है, बल्कि वह अपनी दुर्बलता को समझे और सहज भाव में अपने-आपको खोले और शान्तिपूर्वक उस समय की प्रतीक्षा करे जबकि से 'प्रकाश' मिलेगा। कारण, केवल यह प्रकाश अर्थात् सच्चा प्रकाश ही उसे समझने की शक्ति प्रदान कर सकता है। यह वह चीज़ नहीं है जो उसने अब तक सीखी है, देखी है या जीवन में तथाकथित अनुभव के रूप में प्राप्त की है। वह कुछ और है जो पूर्णतया इससे आगे की वस्तु है और जब तक यह "और वस्तु" जो कि भागवत कृपा की अभिव्यक्ति है उसके अन्दर अभिव्यक्त ना हो तब तक वह यदि अत्यन्त शान्ति और नम्रत्पूर्वक चुप रहे और समझने की, विशेषतया कोई मत बनाने की कोशिश ना करे तो कार्य बहुत शीघ्र हो जायेगा।

ये सब शब्द और विचार मस्तिष्क में एक ऐसा कोलाहल पैदा कर देते हैं जो तुम्हें बधिर बना देता है और सत्य को – यदि वह अपने को प्रकट करना चाहे तो – सुनने से रोक देता है।

शान्त और मौन रहना सीखो। जब तुम्हें कोई समस्या सुलझानी हो, तो अपने मस्तिष्क में सब प्रकार की सम्भावनाओं को, समस्त परिणामों को और उन सब चीज़ों को, जिन्हें करना या नहीं करना चाहिये, उलटने-पलटने के स्थान पर यदि तुम शान्त रहो और सद्भावना के लिये अभीप्सा करो, तो समाधान शीघ्र हो जायेगा, क्योंकि तुम चुप और शान्त हो, तुम उसे सुन भी सकोगे।

जब तुम किसी कठिनाई में पड़ जाते हो तो इसी विधि का प्रयोग करो। चंचल होने, विचारों को खोजने, समाधान को ढूढँने के लिये भाग-दौड़ करने, चिन्तन तथा दुःखित होने तथा अपने मस्तिष्क में इधर-उधर भटकने के स्थान पर – मैं यहाँ बाह्य क्रियाओं की बात नहीं कर रही, क्योंकि

लोगों में सम्भवतः इतनी बुद्धि है कि वे ऐसा नहीं करेंगे, मेरा मतलब यहाँ मस्तिष्क के अन्दर होने वाली हलचल से है – तुम शान्त रहो और अपनी प्रकृति के अनुसार, उत्साहपूर्वक या शान्ति के साथ, तीव्रता या विशालता के साथ या इन सबके साथ 'प्रकाश' का आवाहन करो और उसके पाने की प्रतीक्षा करो।

तब रास्ता बहुत छोटा हो जायेगा।

श्रीमाँ

भागवत कृपा

श्रीमाँ

भागवत कृपा को ग्रहण करने के लिए मनुष्य को केवल एक महान अभीप्सा ही नहीं रखनी चाहिये, बल्कि सरल विनम्रता और पूर्ण विश्वास भी बनाये रखना चाहिये।

भागवत कृपा एक ऐसी चीज़ है जो प्राप्तव्य लक्ष्य की ओर तुम्हें आगे धकेल देती है। उसे मन के द्वारा समझने की कोशिश मत करो; उससे तुम किसी निर्णय पर नहीं पहुँचोगे। क्योंकि वह एक ऐसी विशाल वस्तु है जिसकी व्याख्या मानवीय शब्दों या भावों के द्वारा नहीं की जा सकती। जब कृपा-शक्ति कार्य करती है तब उसका परिणाम या तो प्रिय हो सकता है या अप्रिय – भागवत कृपा किसी मानुषी मूल्य-महत्व का कोई विचार नहीं करती, ऐसा भी हो सकता है कि मनुष्य के सामान्य और ऊपरी दृष्टिकोण से उसका परिणाम संहारकारी हो। परन्तु वह व्यक्ति के लिए सर्वदा ही सर्वोत्तम होता है। वह एक मार है जो भगवान की ओर से आती है जिसमें कि मनुष्य छलांग भरते हुए प्रगति-पथ पर अग्रसर हो सके। कृपा वह वस्तु है जो तुम्हें तीव्र गति से सिद्धि की ओर ले जाती है।

विनम्रता

श्रीमाँ

जापानी मकान के सामने के दरवाजे पर यह कौन आ रहा है? यह फूलों का कलाकार है। यह फूलों को सजाने की कला जानता है। गृह-स्वामी एक थाली लिये आ रहा है जिसमें फूल रखे हैं, साथ ही एक कैंची, एक छोटी-सी आरी और एक सुन्दर गुलदान भी है।

"महाशय" वह कहता है, "मैं इस सुन्दर गुलदान के योग्य गुलदस्ता ना बना सकूँगा।" "मुझे विश्वास है कि आप बना सकेंगे," बड़ी सभ्यता से कह कर गृह-स्वामी कमरे से बाहर निकल जाता है।

अब कलाकार अकेला है। वह काटता, तराशता, मोड़ता, बाँधता जाता है और थोड़ी देर के बाद एक सुन्दर-सा गुलदस्ता गुलदान में दिखायी देता है। सचमुच आँखों के लिए देखने लायक चीज़ बनी है। गृह-स्वामी अपने मित्र के साथ कमरे में आता है; कलाकार एक ओर खड़ा होकर धीरे-से ओठों-ही-ओठों में कहता है :

"मेरा गुलदस्ता कुछ बन नहीं पाया। इसे हटा दीजिये।"

"नहीं", गृह-स्वामी उत्तर देता है, "अच्छा है।" गुलदस्ते के पास, मेज पर कलाकार ने एक कैंची रख दी है जिसका मतलब यह है कि अगर किसी को गुलदस्ते में कोई दोष दिखायी दे, अगर कोई ऐसी चीज़ हो जो आँखों को नहीं भाती तो वह उसे काट कर ठीक कर दे।

कलाकार ने सुन्दर काम किया है, लेकिन वह उसका गुणगान नहीं करता। वह स्वीकार करता है कि उसमें भूलें हो सकती हैं। वह विनयशील है। शायद जापानी कलाकार वास्तव में यह सोचता हो कि उसका काम प्रशंसनयी है। मुझे उसके विचारों का पता नहीं। लेकिन कम-से-कम वह घमण्ड तो नहीं छांटता और उसका व्यवहार अच्छा लगता है।

दूसरी ओर हम घमण्डी लोगों पर हंसते हैं।

दमिश्क का खलीफा, सुलेमान, घमण्डी था। एक शुक्रवार को वह गरम पानी से स्नान करके आया, हरे-हरे कपड़े पहने और सिर पर हरा साफा बाँध कर हरे बिस्तर पर बैठ गया। उसके कमरे में कालीन भी हरा था। उसने आईना लेकर अपना मुँह देखा तो खुश होकर बाल पड़ा :

"हजरत मोहम्मद पैगम्बर थे, अली बकर सत्य के निष्ठावान् सेवक थे। उमर सत्य और असत्य में विवेक कर सकते थे, उस्मान

विनयशील थे, अली वीर थे, मुआविया दयालु थे और यजीद धीर, अब्दुल मलिक एक अच्छे प्रशासक थे और वालिद एक शक्तिशाली स्वामी थे, पर मैं, मैं युवा और सुन्दर हूँ।"

गुलदान में फूल सुन्दर ढंग से सजाये गये हैं और उन्हें देख कर हमारी आँखें खुश होती हैं। लेकिन यह बात हमें कहनी चाहिये, कलाकार को नहीं।

सुलेमान सुन्दर है। यह तो ठीक है कि यह जानने में कोई हर्ज नहीं, लेकिन हम उसकी शेखी पर हँस पड़ते हैं जब वह अपने-आपको आईने में देख-देख कर अपने-आपसे कहता है कि अपनी सुन्दरता के कारण वह सच्चे उमर और धीर यजीद से बड़ा है।

इससे भी बढ़ कर अनर्गल है उस आदमी की शेखी जो यह समझता था कि यह पृथ्वी उसकी महिमा के लिए काफी बड़ी नहीं है और उसे अन्य लोकों में जाना चाहिये। कहानी यूँ है।

ईरान का एक राजा कै कौस था जिसने बहुत से युद्ध लड़े और जीते। वह पराजित देशों को लूट-मार कर इतना धनी बन गया था कि उसने अलबर्ज़ नामक पहाड़ी पर दो नये महल बनवाये। वहाँ इतना चाँदी-सोना भरा था कि रात को भी दिन का-सा प्रकाश रहता था। कै कौस अक्खड़ गर्व से भर गया; उसने सोचा कि वही धरती का सबसे बड़ा राजा है।

अब इबलीस (शैतान) ने राजा के हृदय में भरे घमण्ड को देखा तो उसे अपने जाल में फँसाने का निश्चय कर लिया। उसने एक भूत को नौकर के वेश में राजा को एक सुन्दर-सा गुलदस्ता भेंट करने के लिए महल में भेजा।

नौकर ने राज के सामने धरती को चूम कर कहा :

"राजन्, सारे संसार में आप जैसा कोई राजा नहीं है। लेकिन अब भी एक दुनिया है जहाँ आपका हुक्म नहीं चलता और वह है सूरज, चाँद, तारों और स्वर्ग के गुह्य कोनों की दुनिया। हे राजन्, पक्षियों के पीछे-पीछे उड़ो और आकाश में जा पहुँचो।"

"लेकिन मैं पंखों के बिना कैसे उड़ सकता हूँ?" राजा ने पूछा।

"यह तो आपके बुद्धिमान् सलाहकार ही बता सकेंगे।"

अब राजा कै कौस ने सभी ज्योतिषियों और पण्डितों को बुलाया और उनसे आकाश में उड़ने का उपाय पूछा। उन्होंने सामान्य तरीके सुझाये लेकिन राजा ने उन पर कान ना धरा। अन्त में उन्होंने एक अनोखी योजना बनायी। उन्होंने एक घोंसले से गरूड़ के चार बच्चे पकड़वाये और उन्हें विशेष भोजन आदि देकर खूब बड़ा और मजबूत बनाया अब एक लकड़ी का चौखटा बनाया गया। चारों खूंटों पर एक-एक लकड़ी बांधी गयी और उस पर बकरे का मांस बांध दिया गया। चार लकड़ियों पर मांस के चार टुकड़े बांधे

गये और हर खूंटे के साथ एक-एक गरुड़ बांध दिया गया।

इस चौखटे पर राजा का सिंहासन रख दिया गया और शराब की सुराही के साथ राजा उस पर आन बिराजे। गरुड़ मांस तक पहुँचने के उपाय में तख्ते को उठाये ऊपर उड़े लोगों के आश्चर्य का ठिकाना ना रहा। उनके राजा सचमुच उड़ रहे थे। ऊपर, और ऊपर मांस के टुकड़े, गरुड़ और राजा उठते ही जा रहे थे; बादलों से भी ऊपर, चन्द्रमा के आस-पास। आखिर गरुड़ थक गये। उन्होंने पंख मारना छोड़ दिया और राजा अपनी सुराही और सिंहास तथा चौखटे आदि समेत चीन की पहाड़ियों में जा गिरे। बेचारा राजा भूखा, प्यासा, घायल अकेला पड़ा था। उसके दूत इधर-उधर ढूँढ़ते आये और उसे लेकर राजधानी लौटे। राजा ने जान लिया कि उसकी योजना कितनी बेवकूफी से भरी थी, उसने कितना झूठ गर्व किया था। उसने निश्चय कर लिया कि अब अपने बूते से बाहर उड़ानें ना भरेगा। वह राजकाज में लग गया और इतनी अच्छी तरह काम सम्भाला कि प्रजा से तारीफ-ही-तारीफ मिलने लगी। राजा शेखी की मीनार से उतर कर विनय की ठोस धरती पर आ गया।

कभी-कभी हम ऐसे गर्वीले आदमी से घृणा करते हैं जो केवल अपनी प्रशंसा ही नहीं करता, बल्कि खूब शेखी भी बघारता है। शेखी बघारने वाले को कोई पसन्द नहीं करता, यहाँ तक कि दूसरे शेखी बघारने वाले भी उसे पसन्द नहीं करते।

संसार को भगवान् की नाट्यशाला मानो, तुम अभिनेता का मुखौटा बनो और फिर उन्हें ही अपने द्वारा अभिनय करने दो। यदि लोग तुम्हारी प्रशंसा करते हैं या तुम्हें दुत्कारते हैं तो यह जान लो कि वे भी मुखौटे ही हैं; केवल अंत:स्थित भगवान् को अपना एकमात्र आलोचक और दर्शक मानो।

श्री अरविन्द

माँ की पाठशाला

मृत्युंजय मुखर्जी, हिन्दी रूपान्तर: ज्ञानवती गुप्ता

आज श्रीमाँ ने सन् 1914 की 1, 2, 3, 4 और 6 अप्रैल की पाँच प्रार्थनाएँ पढ़ीं।

उनमें से पहली प्रार्थना के विषय में बच्चों ने प्रश्न किया **"मेरे अन्दर की सभी रचनाएँ एक आलोक स्वप्न की तरह लुप्त हो गयीं।" इसका क्या तात्पर्य है?**

श्रीमाँ :- श्री अरविन्द से साक्षात् होने से पूर्व इतने दिनों तक मैंने जो कठोर साधना की थी, जो गंभीर उपलब्धियाँ मुझे हुई थीं, जिनके बारे में मुझे पूरा भरोसा था – इसे अहंकार नहीं कहा जा सकता, यह था अपनी साधना की उच्च अवस्था का दृढ़ बोध – वह सब एक बारगी मानों शून्य में विलीन हो गया। उनके पास आकर, उन्हें पाकर, उनके हाथों में अपने-आपको संपूर्ण रूप से छोड़ कर मुझे बहुत हल्केपन का (स्वस्ति का) बोध हुआ। सचमुच ही कंधे पर से मानों एक बहुत बड़ा बोझ उतर गया। इतने दिनों तक बिलकुल अकेले ही अकेले अपने-आपको लिये चल रही थी, यद्यपि सहायता सब जगह ही मिलती रही किन्तु पूरी तरह किसी पर निर्भर कर सकूँ ऐसा आज तक कोई नहीं मिला था। निज के बारे में मेरा जो दायित्व था, अर्थात् सदा अपने-आपको जिस कठोर रीति-नीति और अनुशासन में बाँध कर रखना होता था, उस सबसे आज भारमुक्त हो गयी थी। अब से मुझे अपने जीवन और साधना के बारे में कुछ सोचना नहीं होगा, कुछ करना नहीं होगा। ऐसी निश्चिन्तता छा गयी कि सदा मुझे निर्देश प्राप्त होता रहेगा। दूसरी ओर, उच्च आत्म-उपलब्धियों के द्वारा 'सत्य' ने मेरे अंतर में जो स्वरूप ग्रहण कर लिया था वह सब टूट कर चूर-चूर हो गया, उसका कुछ भी अवशेष नहीं बचा। मैं एकदम से शून्य हो गयी, पूरी तरह रिक्त। पुरातन अपने संपूर्ण वैभव के साथ चिर विदा ले गया। मैंने मानों नवजात शिशु की भाँति नया जन्म प्राप्त किया। पहले की वह प्रतीति अब नहीं रही।

बच्चों का दूसरा प्रश्न था, "विस्तार का काल" इसका क्या अर्थ है?

श्रीमाँ ने समझाया, अब बहिर्मुखी होकर चेतना को बाह्य क्रिया-कलाप में भागवत सान्निध्य को मूर्त (अभिव्यक्त) करने का समय आ गया है। यह विस्तार का काल है। ध्यान-मौन अवस्था में समाधिस्थ होकर बैठे रहने का युग अब नहीं रहा। मनुष्य को सीखना होगा कि किस प्रकार विचारों को उनके मूल स्रोत के साथ सुसामंजस्य करके चला जाये। साधारण मन का स्वभाव है कि

वह चीज़ को कोई एक रूप देता है, उसकी किसी अन्य से तुलना करता है या किसी अन्य के मुताबिक करता है या फिर अपने मानदण्ड से कोई नयी चीज़ गढ़ डालता है। समग्र को एक साथ अखंड भाव से देखने की सामर्थ्य उसकी नहीं है। यथार्थ उन्नति का लक्षण है – अपने मन की बनायी हुई जो भी परिकल्पनाएँ हैं उन सबको प्रति पग पर आवश्यकतानुसार तोड़ सकना, छोड़ सकना और उन्हें नये रूप देने के लिये सदा सचेष्ट रहना और इसमें थोड़ा भी कष्ट अनुभव ना करना, ना ही धैर्य खोना। शायद एक उदाहरण से तुम कुछ समझ पाओगे। एक दार्शनिक सिद्धान्त है –

'हिंसा नहीं करनी चाहिये, जीव-हत्या नहीं करनी चाहिये, इत्यादि'। मन द्वारा बनायी इस नीति को समय के अनुसार ना छोड़ने से, प्रगति तो दूर की बात रही यथार्थ सत्य से भी दूर चले जाओगे। किन्तु कठिनाई यह है कि मनुष्य किसी भी तरह मन द्वारा बनाये संस्कारों को छोड़ना ही नहीं चाहता। अपनी परिकल्पित सृष्टि के अंदर ही आराम से रहना चाहता है, यह मन का स्वभाव है। जबरदस्ती करके यदि तुम आज मन के पुराने बंधनों को काट भी फेंको, तो देखोगे कि कल मन ने फिर से कुछ नया लेकर बंधनों की रचना आरंभ कर दी है। सत्य के अविकृत रूप पर अर्थात् उसके मूलतत्व पर विश्वसृष्टि निर्भर है। जो मूलतत्व सृष्टि के प्रारंभ से मनुष्य की अंतरम सत्ता निहित था उसने मन के मिश्रण (रसायन) से परिवर्तित होकर एक विशेष अर्थात् एकदम दूसरा ही रूप ले लिया। तब दिव्य सत्ता उतर कर आयी। उसने मूलतत्व को उसके अपरिवर्तित रूप में देखना चाहा और चाहा कि नूतन परिवेश में उसको भिन्न प्रकार का नया रूप दिया जाये। किन्तु सत्य के मर्यादा-रक्षक उसके निर्देश को समझ ना सके, उन्होंने परिवर्तन के पक्ष में होना स्वीकार नहीं किया क्यों कि अपने मन की सीमा से बाहर के सत्य को स्वीकर करने के लिये वे तैयार नहीं थे। दिव्य सत्ता के लिये तब और कुछ कर सकने का उपाय नहीं रहा। परिणाम स्वरूप जगत् जिस अज्ञान-अंधकार में था, उसी में रह गया और चक्र की तरह परिवर्तन की धारा में गोल-गोल घूमता हुआ उसी अज्ञान में वास करने लगा।

इससे अधिक संक्षेप में तुम्हें नहीं बता सकती। हो सकता है तुम विशेष कुछ हृदयगंम ना कर सके होओ, कोई बात नहीं, बाद में बड़े होने पर करोगे। अभी के लिये केवल इतना जान कर रखो कि जो यथार्थ सत्य को अभिव्यक्त करना चाहता है उसे अपनी प्रतिक्षण की उपलब्धि (प्राप्ति) को आवश्यकता के अनुसार आमूल बदलने के लिये तैयार रहना चाहिये। नहीं तो, यदि आज के सत्य को कस कर पकड़ कर रखोगे तो कल वही मिथ्या हो जायेगा। बड़े होने पर, प्रगति-पथ पर बढ़ने के समय, केवल

एक ही वस्तु को पकड़ कर रख सकते हो, जहाँ मिथ्यात्व के फंदे में पड़ने का भय नहीं हैं – वह है मूल सत्य को पकड़ कर रखना। उसके अतिरिक्त और कोई रूप शाश्वत नहीं है। तुम्हारे भीतर वह अविकृत सत्य विद्यमान है।

इसको जीवन के प्रत्येक कर्म में, प्रत्येक गतिविधि में उतारना आसान काम नहीं है, किन्तु दूसरा और कोई उपाय भी नहीं है। साधना का मतलब ही यही है। कभी भूलो मत कि सदा आगे बढ़ना है। जो वस्तु तुम्हारी धारणा में आयी है, सत्य के जिस रूप को तुमने पाया है, उसको कसकर पकड़ रखना ठीक नहीं है। तुमने एक बार जो सीखा या जाना है, उसको प्रगति की धारा में, काल-प्रवाह के साथ-साथ छोड़ते हुए आगे बढ़ना सीखना होगा। "इस बार जो जाना है वह अंतिम रूप से पक्का है" ऐसा मानना ठीक नहीं है। मानव की काल-गणना की धारणा बहुत परिमित है। कल जो सत्य था, चेतना की विकास की धारा में हो सकता है आज उसका कोई मूल्य ही ना हो। इसी से आज के सत्य को, मुक्त मन के द्वारा ग्रहण करना सीखना होगा, तभी तुम जीवन में सतत प्रगति-पथ पर तीव्र गति से बढ़ते चले जा सकोगे।(2 अप्रैल 1914)।

बच्चों का चौथा प्रश्न था,

"समस्त अतीत छीन लिया गया है, इसका क्या मतलब है?"

श्रीमाँ- "क्यों तुम्हें याद नहीं (2 दिसम्बर 1951) जब उस दिन खेल के मैदान में तुम सबने साँप की केंचुली उतारने का खेल का प्रदर्शन देखा था? ठीक उसी प्रकार बाह्य आवरण को उतार फेंकना होगा। सारे जीवन में जो प्राप्त किया है, जो अर्जन किया है, वह तो मानों बाहर का खोल है। उसके झड़ जाने पर ही कुछ नया स्थान ले सकेगा।"

बच्चों का एक और प्रश्न था, "कोरे पृष्ठ जैसा बन जाना" इसका क्या मतलब है?

श्रीमाँ : "यह एक उपमा है, कोरे पृष्ठ के साथ तुलना। जिस पर कोई धब्बा, कोई लकीर नहीं, एकदम कोरा, उजला। ऐसे कोरे हृदय पर ही भागवत इच्छा अंकित हो सकती है। मनुष्य की इच्छा, उसकी व्यक्तिगत इच्छा उसको सीमाओं में अटकाये रखती है। ये ही हैं धब्बे, बन्धन। जब तक मनुष्य पूरे का पूरा कोरे कागज-सा नहीं बन जाता तब तक भागवत इच्छा मानव सत्ता का रूपांतर साधित नहीं कर सकती, उसे अवसर, सुयोग ही नहीं मिलता। भागवत इच्छा को सुयोग देने के लिये ही मनुष्य का आत्मसमर्पण, अकपट पूर्ण आत्म-दान आवश्यक होता है और जब मनुष्य यह समर्पण अकपट रूप से करने में

समर्थ हो जाता है तब उसकी स्थिति कोरे पृष्ठ जैसी होती है।"

समर्पण का अर्थ है देना, अपने-आपको उँडेल देना, भीतर से अपने-आपको खाली कर देना। पूर्ण समर्पण का अर्थ है अपने को समग्र रूप से खाली कर देना। प्रथम समर्पण तो मन से ही होता है। इसीलिये पहले तो मन ही खाली हो जाता है। पुराने अभ्यास, सोचने-विचारने के पुराने तरीके, सब नीरव, शांत हो जाते हैं। तब मनुष्य की अवस्था हो उठती है अस्वाभाविक। जो मन इतना सोचता-विचारता था, हठात् लगने लगता है कि सोच-विचार के अभाव में वह मानों मूढ़ हो गया है। किसी-किसी की यह अवस्था थोड़े दिन रहती है और किसी-किसी को लंबा समय भी लग जाता है। किन्तु यही काल है परीक्षा का काल। अनेक लोग इसे सह नहीं पाते। यह मूढ़ता की अवस्था उन्हें थोड़े ही दिनों में असह्य हो उठती है। तब वे पागल जैसे हो जाते हैं, विलाप करने लगते हैं, कहते हैं – यह क्या हो गया है मुझे? क्या सचमुच ही मैं पागल हुआ जा रहा हूँ ? मैं कुछ भी समझ नहीं पा रहा, सोच नहीं पा रहा, पकड़ (ग्रहण) नहीं पा रहा, आखिर क्यों? क्या मेरी सब साधना विफल हो गयी है ... इत्यादि। अनेक लोग हमारे पास आते हैं, विनती करते हैं – मेरी पूर्व अवस्था मुझे लौटा दो, मैं कुछ सोच-समझ नहीं पा रहा हूँ, यह असह्य हो उठा है। पहले तो हम ऐसी चेष्टा करते हैं कि जिससे वे अधीर ना हों, पुराने अभ्यास उनसे छुट्टी पा जायें और शांत हो जायें तथा मानव-आधार अपनी नव-समर्पित अवस्था के कारण उपस्थित इस अस्थायी कष्ट को पार कर शीघ्र ही नव-चेतना में प्रतिष्ठित हो जाये और हम नये रूपांतर का कार्य आरंभ कर सकें। परन्तु अधिकतर लोगों के मामले में हम सफल नहीं हुये। कारण, लोग बहुत विलाप करते हैं कि हम और सह नहीं सकते, हम पागल हुए जा रहे हैं, इत्यादि। तब बाध्य होकर हम उनकी पहली अवस्था लौटा देते हैं और वे भी शांत होकर पहले की तरह बौद्धिक-विवेचना से दीप्त सम्भ्रांत मनुष्य बन जाते हैं। कितने प्रसन्न! किन्तु इसे क्या हुआ? फल क्या निकला? समर्पण की अवस्था निष्फल हो गयी। साधारण अभ्यासवश मनुष्य जिस प्रकार सोच-विचार करता है, समर्पण कर देने पर वह चिर-अभ्यस्त तरीका अब और काम नहीं करता और नये अभ्यास, अभी आये नहीं होते। इससे यह ठीक ही लगता है कि स्थान खाली हो गया है पर यह कोई सच्ची या स्थायी अवस्था नहीं होती।

इस स्थिति में समझदार मनुष्य का कर्त्तव्य है कि बुद्धि को लौटा देने के लिये हो-हल्ला ना मचाये, धैर्य धारण करे। चैत्य पुरुष को, हृदय स्थित ऋषिकेश को सामने लाकर, प्रतिक्षण उसके साथ एकात्म होकर, मन के संदेही चिंतन को समझा कर कहा जाये कि

यह केवल संक्रमण का काल है, एक अवस्था से दूसरी अवस्था तक पहुँचने का काल। यह वास्तव में बुद्धि का लुप्त हो जाना या पागल हो जाना नहीं है।

ज्ञान की विजय

श्रीमाँ

महर्षि भृगु अपनी भव्यता में प्रकाशमान कैलाश पर विराजमान थे। भारद्वाज ने उनसे कुछ प्रश्न पूछेः

"इस जगत् को किसने बनाया?

आकाश कितना विस्तृत है?

किसने जल, अग्नि, पवन और धरती को जन्म दिया?

जीवन क्या है?

अच्छा या शुभ क्या है?

इस जगत् के परे क्या है?

और ऐसे ही बहुतेरे प्रश्न पूछे। प्रश्न महान् थे और एक महर्षि ही उन सबके उत्तर दे सकता था!

लेकिन भारद्वाज में पूछने की भावना थी, एक ऐसे आदमी की भावना जो पूछता जाता है, पूछता जाता है और कभी सन्तुष्ट नहीं होता।

बच्चा सबसे बड़ा प्रश्नकर्ता होता है। वह हमेशा पूछता रहता है : "यह क्या है? वह क्या है? यह कैसे बना? यह कैसे चलता है? बिजली क्यों कौंधती है? ज्वार-भाटा क्यों आता है? सोना कहाँ से आता है? और कोयला और लोहा पुस्तकें कैसे छपती हैं?..." और ऐसे ही अनेकानेक प्रश्न।

बच्चे और आदमी पूछते हैं। वे बताते भी हैं। जब हम कोई बात जानते हैं तो प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। हम सिखा सकते हैं, हम ज्ञान का प्रसार कर सकते हैं।

हमारे चाचा जी

संस्मरण

आज के दिन हम सबके श्रद्धास्पद परम पूज्य चाचा जी श्री सुरेन्दनाथ जौहर फ़कीर श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के बताये मार्ग को सबके लिये प्रशस्त कर अपने जीवन को एक बीज के रुप में धरती में स्वाहा कर और मुक्त होकर अपनी जीवन लीला समाप्त कर अपने परम धाम में चले गये। उनके बारे में कुछ भी कहना मुश्किल है। जो लोग उनसे मिले हैं चाहे वे एक क्षण के लिए मिले हों अथवा पूरा जीवन उनके साथ बिताया हो वे उस महान पुरुष को जानते हैं। सबको अपने अपने तरीके से अपने अपने ढंग से अनुभूति हुई है।

उन्होंने अपने आपको एक ऐसा वटवृक्ष बनाया जैसे एक छोटा सा बीज धरती में अपने आपको स्वाहा कर पहले पौधे के रुप में बनकर, फिर वृक्ष के और फिर महावृक्ष के रुप में कितने लोगों को पनाह देता है, कितने लोगों को सहारा देता है तथा कितनों को अपने फल से जीवन देता है। आज यह सब हमारे देखने में और अनुभव में आ रहा है। आज हम श्रीअरविन्द आश्रम दिल्ली में, जहाँ-हम बैठे हैं- वही चीज है जिसको अनुभव कर रहे हैं। श्री चाचा जी ने पहली ही दृष्टि में श्रीअरविन्द और श्रीमाँ को पहचान लिया था और समर्पण कर दिया था, ना सिर्फ अकेले बल्कि अपने पूरे परिवार के साथ उन्होंने उस महाज्वाला में छलाँग लगा दी थी। आज भी हम उस तेज पूर्ण वातावारण में जी रहे हैं जिसे सीधा श्रीअरविन्द और श्रीमाँ का संस्पर्श मिला।

यहाँ, उस जमाने में उत्तर भारत में पहले शायद ही कोई श्रीअरविन्द और माता जी का नाम जानता था। सन 1939 में पहली बार अचानक जब चाचा जी पांडिचेरी पहुँचे तो उन्हें वहाँ पर एक नई ही दुनिया की झलक मिली और जब वहाँ से लौटकर आये तो वहीं के रंग में रंगकर। उस झलक को आरोपित कर उन्होंने शुरू में श्रीअरविन्द निकेतन बनाया। उस समय हम लोग बहुत छोटे थे। स्मृति है कि वहाँ का वातावरण बिलकुल अलग था। श्रीअरविन्द और श्रीमाँ के वहाँ चित्र थे। अगरधूप जल रही थी, फूलों से बहुत सुन्दर महक आ रही थी, गहन शान्ति थी। इतनी गहन, इतनी मधुर कि उसका वर्णन नहीं किया जा सकता । आज भी उसकी मधुर स्मृति और खुशबू है। उसकी अपनी शक्ति और सन्देश है।

चाचा जी ने एक विद्रोही बालक के रूप में सोलह सत्रह साल की उमर में टूटी हुई

चप्पल और फटी हुई कमीज के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। एक ऐसे शहर में जिसमें किसी को जानते नहीं थे, पहिचानते नहीं थे और चौरासी साल तक की उम्र में हम सबके लिये इतना बड़ा एम्पाअर बनाकर चले गये। जो भगवान् के रास्ते पर चलना चाहते हैं उनके लिये राजकुमार और राजकुमारियों जैसा जीवन देने को उन्होंने पुरा आयोजन किया और चले गये। जबकि वे लाहौर में पढ़ते थे और हॉस्टल में रहते थे उनके हॉस्टल की फीस ग्यारह रु. महीने थी जो उनके पिता जी देने में असमर्थ थे। कई परिवार के लोगों से, एक तरह से मिलकर उसे पूरा कर वह चन्दा जैसा बनता तब वे भेजते थे। उन दिनों महात्मा हंसराज जैसे व्यक्ति वैदिक संस्कृति को धारणा किये हुये उनके शिक्षक थे जिन्होंने अपने विद्यार्थियों के भीतर उनकी रूढ़िगत कमजोरीयों को दूर किया तथा लोभ, लालच व आकर्षण पर विजय पाने के लिये उन्हें समझाया कि तुम अपने आपसे हमेशा एक सवाल पूछो "क्या मैं उसके बिना रह सकता हूँ।" मनुष्य का निर्माण कैसे होता है उसे वे रोज स्कूल की एसेम्बली में बताते थे। मनुष्य जब पैदा होता है तब एक लोंदे की तरह होता है पर किस तरह कलाकार उसमें से एक देवता की मूर्ति गढ़कर सँवारकर अभिव्यक्त कर देता है। चाचा जी के जीवन को बनाने में आर्य समाज, आर्यकुमार सभा और कांग्रेस आदि का हाथ रहा। विदेशी शासन को बाहर निकालना है, इसके लिये उनके हृदय में तड़प थी। वे प्रेरणा सेतु थे जिन्होंने अपने पूरे परिवार को श्रीमाँ और श्रीअरविन्द के योग के साँचे में ढाला। वे कहते थे कि मैं तो आग का गोला हूँ और मुझे बचपन से ही जहाँ अपने से बड़ी आग दिखी तो मैं उसमें कूद गया और इसी इसी तरह करते करते आर्यकुमार, कांग्रेस, देश की आजादी में मैंने सब कुछ किया और श्रीअरविन्द और श्री माता जी की आग में भी कूदा। वे कहते थे कि वह आग हम सबमें है, उसे हम जागृत करें। आज के दिन हम कामना करते हैं वह 'स्प्रिट' हम सब में जागृत हो, आत्मा का बल और शक्ति हम सब सीधा अनुभव करें।

देवी करुणामयी

***

मेरा यह सौभाग्य नहीं था कि मैं उनसे, शरीर में उनके होते हुये मिल पाता। लेकिन जिनका उनके साथ बहुत ही निकट का सम्बन्ध रहा है उनकी स्मृतियों से मुझे इतनी झलक मिल गई है कि मुझे ऐसा लगता है जैसे मैं उनसे मिला था।

अपनी 16 साल की उम्र में चाचा जी ने गाँधी जी के आवाहन को सुना और पढ़ाई लिखाई छोड़कर स्वतंत्रता संग्राम में कूद पड़े। हम प्रायः देखते हैं कि इस तरह के आवाहन पर बहुत कम लोग ध्यान देते हैं। यदि कोई ध्यान भी दे तो उसके माँ बाप

या उनके मित्र यही कहेंगे कि बेवकूफ मत बनो, देश आज या कल तो आजाद होने वाला नहीं, तुम्हारी अपनी पूरी जिन्दगी चली जायेगी, उसे बर्बाद मत करो। ये सब तुम्हें करने के लिये तुम्हीं बचे हो। तुम्हारी घर में अपनी जिम्मेदारियाँ हैं यह करना है, वह करना है-सब कुछ कहकर समझा बुझाकर उसे बैठा देते हैं। कुछ हद तक चाचा जी को भी संघर्ष करना पड़ा, लेकिन उन्होंने किसी की भी नहीं सुनी, दिल्ली आ गये और कांग्रेस कमेटी के आफिस में जाकर बोले कि बताइये मुझे क्या करना है? महात्मा गाँधी की बात मैंने सुनी है और मैं यहाँ पहुँच गया हूँ।

काम तो उन्हें बता दिया गया लेकिन उनके पास जीविका का कोई साधन नहीं था, पास में एक पैसा नहीं था। इसलिये चाचा जी को दिल्ली आने के बाद काफी समय तक संघर्ष करना पड़ा और समय मुश्किल से कटा। और सबसे बड़ी बात यह थी कि चाहे उन्होंने अपने जीवन में कितनी भी कठिनाई देखी, कभी हार नहीं मानी। और जब अच्छा समय आया तब दूसरों को भूले नहीं और जो कुछ उनके पास था उसे सबमें बाँटा।

चाचा जी ने अपने अन्दर की एक आवाज सुनी और वे देश के स्वतंत्रता संग्राम में लग गये और फिर मुड़ कर तब तक नहीं देखा जब तक अपना देश आजाद नहीं हुआ। इस बीच वो कई जुलूसों में शामिल हुये, कई बार जेल गये, लाठियों का सामना किया। उनके पैर में बेड़ियाँ लगीं, इससे उनके पैरों में जो घाव हुये उसके निशान जीवन भर बने रहे। जब देश आजाद हुआ तब अधिकतर लोग लीडर बन गये लेकिन तब तक उनको एक और रास्ता मिल चुका था।

अपना देश तो 1947 में आजाद हुआ लेकिन 1939 में ही उन्हें अपने जीवन के लक्ष्य का पता चल गया था। वे श्रीअरविन्द और श्रीमाँ के भक्त बन चुके थे। उन्होंने पाण्डिचेरी जल्दी जल्दी जाना शुरू किया। अपने बच्चों को वहाँ छोड़ दिया माँ के स्कूल में पढ़ने के लिये और देश की आजादी के बाद सोचने लगे कि यहाँ पर क्या होना चाहिये।

कुछ शुरुआत तो वे पहले ही कर चुके थे, सन 1943 में श्रीअरविन्द निकेतन के रुप में, लेकिन श्रीमाँ की स्वीकृति और आशीर्वाद से 1956 में उन्होंने यहाँ श्रीअरविन्द आश्रम की स्थापना की तथा अपना धन और शक्ति उसमें लगाई। इन दोनों चीजों का उन्होंने अच्छी तरह से सदुपयोग किया। वे काम करने में सीरियस थे लेकिन अपने को सीरियसली नहीं लेते थे और किसी भी स्थिति में मजाक भी कर लेते थे। नागा साधुओं को देखकर एक बार उन्होंने मजाक में कहा था कि चलो और कोई फायदा हो न हो इस तरह से रहने का एक फायदा तो है, इनकी जेब कोई काट नहीं सकता।

हम लोगों का यह बहुत सौभाग्य है कि उनकी स्थापित की हुई संस्था में हम सबको रहने का अवसर मिला है। श्रीअरविन्द ने कहा है कि जो लोग भगवान के लिये काम करते हैं वे भगवान के राज्य में निवास करते हैं। हम उस आनन्द को अनुभव करें तो एक जिन्दगी क्या हजारों जीवन बार-बार सेवा करने के लिये तैयार रहेंगे और जहाँ तक आध्यात्मिक विकास का प्रश्न है वह तो अपने आप हो जायेगा।

आश्रम को चलाने में चाचाजी के समक्ष जो कठिनाइयाँ और समस्यायें आई उसका सुन्दर उल्लेख 'ए न्यू बर्थ' नामक डी.वी.डी. में उपलब्ध है। यह डी.वी.डी. हम सबकी गीता है। यह भी एक अर्जुन और भगवान् कृष्ण का संवाद है। चाचाजी को आप अर्जुन समझ लीजिये और जो माँ हैं वही भगवान् कृष्ण हैं और श्रीमाँ ने चाचाजी के प्रश्नों का जो उत्तर दिया है वह सबके लिये पठनीय है।

डॉ. रमेश बिजलानी

***

हमारे पिताजी

अपने बचपन की जो बातें मुझे याद है वह यह कि हमारे पिता जी हम लोगों के साथ बहुत कम रहे। बहुत ही कम। हम लोग जब छोटे थे तब आधा टाइम तो वे जेल में ही होते थे। एक साल का जेल, दो साल का जेल। मुझे अब याद भी नहीं है कि कितनी बार वे जेल में गये देश की आजादी के आन्दोलन में और इसलिये घर पर ही हमलोग अपनी माँ के साथ ही ज्यादा बड़े हुये। उन दिनों हम लोग दिल्ली के बंगाली मार्केट में 14 नम्बर सेंट्रल लेन पर रहते थे। अभी कुछ दिन पहले मैं वहाँ गई थी और देखा कि आज भी वह बिल्डिंग वैसी की वैसी ही है जो हमारे किसी रिश्तेदार की थी और हम लोग उस पर किराये से रहते थे। उस बिल्डिंग में अभी कोई कोर्ट केस चल रहा है, इसलिये बदली नहीं है।

एक चीज मुझे याद है कि जब हम छोटे थे, अगर कोई भी बच्चा रोता था, मेरे पिता जी उसको उठाकर बिल्डिंग के अन्त में गेट के पास एक बेंच पर बैठा देते थे। वह बेंच सीमेंट का था जो रोने वालों का बेंच था, और कहते थे कि जब तक तुम्हें रोना है वहाँ रोओगे और जब रोना खतम होगा तब घर में आओगे। और सच में हम लोग वहाँ बैठकर रो लेते थे और जब रोना खतम हो जाता था तब अपने आप अन्दर आ जाते थे।

मुझे याद है कि हमारे और सटे हुए दूसरे घर के बीच एक दीवार थी। एक बार मेरी माँ उस पर सीढ़ी लगाकर अपने घर के कागज पत्र उठा-उठाकर पड़ोसी के घर में डाल रही थी, जल्दी जल्दी फिर भाग के और कागज ला रही थीं। फिर सीढ़ी पर चढ़कर उनके घर में डाल रही थीं, बात यह थी कि हमारे घर में पुलिस आने वाली थी हमारे घर की तलाशी लेने के लिये, तब हम छोटे थे, ज्यादा समझ

नहीं थी और पिता जी कहीं भाग गये थे। पिताजी को पुलिस पकड़ नहीं पाई। उसी समय (मैं और मेरा छोटा भाई जितेन्द्र हम दोनों की उम्र में बहुत कम फर्क है एक साल से कुछ अधिक) हम दोनों ने बाहर जाकर पुलिस मैन को कहा कि (पुलिस गेट को दोनों तरफ खड़ी थी)- "हमें बन्दूक दो" उन्होंने कहा- "बन्दूक क्या करोगे?" हमने कहा – "हम तुमको मारेंगे, तुम हमारे पिताजी को पकड़ने आये हो।"

उस जमाने में हमारे पिताजी कोयला बेचते थे, ठेले में रखकर घर-घर बेचा करते थे। बाद में उन्होंने कोयले की अपनी एक कंपनी बना ली थी और कोयला दूसरों से बिकवाते थे। एक बार की बात है , हमारे घर के बाहर पिताजी को पकड़ने के लिये पुलिस खड़ी थी, तभी कोयला वाला कोयला देने के लिये हमारे घर आया। उसके सिर में पगड़ी बँधी हुई थी और सारा मुँह कोयले से काला था। जब कोयला वाला घर के अन्दर आया, तब हमने उसे ठीक से देखा और देखकर आश्चर्य चकित रह गये, वे तो इस वेष में हमारे पिताजी थे। उन्होंने किचन में माँ मे पास बैठकर खाना खाया और फिर कुछ करके वैसे ही वे घर से निकल भी गये। इस तरह प्रायः वे लोगों को चकमा देकर इस तरह के मजाक कर लेते थे।

जब हम लोग पांडिचेरी चले गये तब हर दर्शन में यानी साल में चार बार पिताजी पांडिचेरी आया करते थे, एक बार वे मेरी माँ के साथ ट्रेन में आया करते थे और तीन बार अकेले एरोप्लेन से। स्मरणीय है कि मदर अंगूर बहुत खाया करती थी उनके लिए रोज अंगूर का जूस बनता था। कई भक्त अंगूर लाते थे। एक बार मेरे पिताजी ने दिल्ली से अंगूरों से भरी हुई एक बड़ी पेटी खरीदी और जब वे एयरपोर्ट पर बुकिंग के लिये गये तो उन्हें कहा गया कि इसका वजन बहुत अधिक है आप नहीं ले जा सकते। पिताजी ने उन्हें समझाने की कोशिश की कि यह मैं मदर के लिये ले जा रहा हूँ लेकिन वे नहीं माने और कहा कि आप इसे नहीं ले जा सकते। पिताजी ने कहा कि प्लेन में बहुत मोटे मोटे लोग जा रहे हैं, मैं तो बहुत पतला हूँ मेरा वजन बहुत कम है और अंगूर की पेटी का वजन मिलकर मोटे आदमियों के वजन से कम होगा। मुझे इसे ले जाने दो। लेकिन वह माना नहीं। तब पिता जी ने कहा ठीक है। उन्होंने अपना सूटकेस खोला और उसमें जितने कपड़े शर्ट्स और पाजामे आदि थे- सब पहन लिए और बोले इसका क्या करोगे चलो। वह वेचारा हँस हँस के कुछ नहीं कह पाया। वह यह तो नहीं कह सकता था कि कपड़े उतार कर जाओ। तो इस तरह पिता जी अंगूर लेकर आये। चेन्नई पहुँचे। चेन्नई में तो इतनी गर्मी होती है। उस जमाने में एयर कंडीशन कार भी नहीं होती थी। सारे कपड़े पहने हुये टैक्सी से पांडिचेरी पहुँचे।

हम सब बच्चों को पास में बिठाया और एक एक करके गिनवा गिनवा के एक, दो, तीन, चार, सारी शर्ट्स और पाजामे उतारे तो हम लोग हँस हँस कर लोट पोट हो रहे थे।

जब हमारे पिता जी पांडिचेरी आते थे तब हम लोग बड़ी उत्सुकता के साथ उनके नये नये जोक, व्यंग और मजाक सुना करते थे। उन्हें बहुत ही जोक आते थे और वे प्रायः हर बात को जोक बना देते थे। चौदह साल बाद सन 1958 में हम लोग पहली बार पांडिचेरी से हिमालय की सैर करने निकले थे। तब दिल्ली में उनके चारों भाई हम लोगों से मिलने आये थे। हमें याद है जब वो चारों भाई मिलकर आपस में बात करते थे तब उनका एक एक वाक्य हँसी और मजाक से भरा होता था इस तरह हमारे पूरे परिवार में इसी तरह का माहौल था बात बात में जोक और मजाक।

पांडिचेरी में जब पिता जी होते थे तब वे शाम को खेल के मैदान में बैठ जाते थे तब खाली हम लोग ही नहीं, बल्कि हमारी पूरी मित्र मण्डली उनके चारों ओर बैठती थी और उनका जोक सुनती और मजा लेती थी।

उन दिनों हमारे बोर्डिग में लगभग 20 बच्चे थे माता जी से अनुमति लेकर वे हम सभी बच्चों को पिकनिक पर ले जाते थे। उस जमाने में पांडिचेरी में तो बस होती नहीं थी इसलिये वे किराये में एक ट्रक लेते थे और उसमें हम सबको बिठाकर चल पड़ते थे। फिर ट्रक को मार्केट में रोककर सब्जी और जरूरत के सब सामान खरीदते थे। उनको सब पता होता था कि कितना क्या क्या ले जाना है। निर्दिष्ट स्थान में पहुँचकर हम लोग खूब मौज करते थे और सबका खाना पिता जी खुद बनाते थे। वे खाना बनाने में बहुत कुशल थे। वे खाना बना के फिर हम लोगों को खिलाते थे।

फिर उसके कई सालों बाद मैं दिल्ली आई और पिता जी के साथ काम करने लगी। मैं जब काम सीख ही रही थी तब उन्होंने मुझसे कहा कि 'शब्द' का स्टाक देखो, उसमें कितनी किताबें हैं और रिकार्ड में कितनी हैं।

स्टाक चेकिंग के बाद मैंने पाया कि पन्द्रह बीस हजार रुपये की किताबें कम हैं। उन दिनों 'शब्द' में बैठते थे मास्टर जी। मास्टर जी मेरे पिता जी के पक्के दोस्त थे उन्होंने कभी शादी नहीं की और लता जी और अनिल जी को एक टयूटर के रुप में पढ़ाने के लिये वे रखे गये थे। उनका नाम था मुरारीलाल पराशर। हम सब लोग उनको मास्टर कहकर बुलाते थे। तो उस जमाने में मास्टर जी 'शब्द' का काम देखा करते थे।

एक बार की बात है कि गाँधी जी ने सत्याग्रह की घोषणा की और कहा कि इसके लिये हर एक परिवार में से एक जन को जेल में जाने के लिये सरेंडर करना चाहिये। पिता जी उस समय बीमार थे इससे वे जेल नहीं जा पाये तो मास्टर जी चले गये और

साल भर जेल में रहे। इसलिये उन्हें फ्रीडम फाइटर की 500 रूपये महीना पेंशन मिलती थी।

'शब्द' में किताबें कम होने पर पिता जी ने मास्टर जी को बुलाया और कहा कि 'शब्द' में पन्द्रह बीस हजार रूपये की किताबें कम है। आप हर महीने अपनी पेंशन से इसकी भरपाई करेगें। जाकर लाइये। मास्टर जी अपनी पेंशन लाये और पिता जी को 500 रू0 उस महीने का दे दिया। इसके बाद उन्होंने नहीं दिया। जब मैंने पिताजी को इसकी याद दिलाई तो पिताजी ने कहा कि वे कहाँ से देंगे और किताबें गईं तो कहाँ गईं। जिसने चुराया होगा वह 'मदर' 'श्रीअरविन्द' की किताबें पढ़ ही तो रहा होगा। लोग किताबें चोरी करते हैं पढ़ने के लिये। चलो कुछ तो श्रीअरविन्द की बातें उनके सिर में तो गईं। भूल जाओ इसे।

इसी तरह बाद में पिताजी की आँखों में कैटरेक्ट हो गया। डाक्टर ने मना कर दिया था और कहा थी कि आप गाड़ी नहीं चलायेंगे। एक दिन सुबह सुबह पिता जी उठे तो ड्राइवर ने बाथरूम जाने आने में 10-15 मिनिट लगा दिये होंगे। पिताजी गाड़ी लेकर खुद चले गये। मैंने ड्राइवर को कहा -'कैसे चले गये'। इस पर ड्राइवर का कहना था कि मेरे आने से पहले ही चले गये। पिताजी में धैर्य नहीं था। जो करना है अभी करना है: कल नहीं, या दो मिनिट बाद भी नहीं। हर एक चीज जो करना है उसी वक्त। जाना है तो अभी जाना है, ड्राइवर नहीं है तो खुद चलाना है।

जब दो घंटे बाद वे वापस आये तो मैंने कहा पिताजी यह आप क्या करते हैं? डाक्टर ने आपको मना किया है गाड़ी मत चलाइये। आपको कुछ दिखता नहीं है और आप गाड़ी लेकर रोड पर चला रहे हैं कहीं एक्सीडेंट हो जाये, आप देख तो सकते नहीं। इस पर वे गुस्सा हुये और बोले- कौन कहता है कि मैं देख नहीं सकता? मैं ज्यादा देख सकता हूँ। तुम एक रास्ता देखती हो, मैं दो रास्ते देखता हूँ।

तो फिर हँसी छूट गई और सब खतम हो गया। तो बस इसी तरह हँसते-हँसते ही हम लोग बड़े हुये।

तारा जौहर

'एक्शन बियांड हैल्प एंड सपोर्ट'

डौली मंडल, हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता

क्लीन माइंड प्रोग्राम के अन्तर्गत राम गढ़ यात्रा पर रिपोर्ट:

हमें 25 मई से 30 मई तक श्री अरविंद आश्रम मधुबन, रामगढ़ में रहने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। आश्रम का सुखद और आध्यात्मिक वातावरण अत्यन्त आनन्ददायी था। हमें सनराइज विद्यालय के शिक्षकों और विद्यार्थियों से बातचीत का अवसर भी मिला।

पहले दिन हम प्रधानाचार्य से मिले जिन्होंने हमारा परिचय गणित के शिक्षक से करवाया। वो हमें छठी, सातवीं और आठवीं कक्षा में ले गयीं जहाँ विचार विनिमय के बाद हमने उन्हें गणित और पहाड़े वस्तुओं की सहायता से सिखाने का विनम्र सुझाव दिया। नर्सरी की अध्यापिकाओं से भी हमारी बात हुयी। हमने उनसे पाठ योजना, 'मेरी फैमिली' की थीम से सम्बन्धित अलग अलग गतिविधियों और विभिन्न अक्षरों की शब्दमाला से परिचित होने के बारे में बात की। हमने उन्हें प्रतिभिज्ञा, अलग अलग वस्तुओं से सम्बन्धिता और 'शो एन्ड टेल' क्रिया पर ध्यान केन्द्रित करने का सुझाव दिया। नर्सरी अध्यापिका का 'माई फैमिली' गीत को क्रियाओं के माध्यम से प्रस्तुत करना रूचिपूर्ण था। हमने अन्य कक्षाओं को भी देखा जहाँ विद्यार्थी लिखने की कला का अभ्यास कर रहे थे। जब हमने बच्चों से बात की तो हमें पता चला कि वे बिना समझे ही

दी गयी विषय सामग्री की नकल कर रहे थे यद्यपि सबका हस्तलेख प्रशंसनीय था। अध्यापक पाठयक्रम के अनुसार सभी बच्चों को अपना अपना कार्य नोटबुक में लिखने के लिये प्रेरित कर रहे थे जो बच्चे बड़ी सफाई से कर रहे थे।

बजे का खाना खाया। तीसरे दिन वे सांय ट्रैकिंग के लिए गए। उस शाम भारी बारिश

और तूफान में युवा छात्रों ने पूरी तरह से भीगने का भी आनन्द लिया।

एक दिन उन्हें बाजार जाने की अनुमति मिली, जिसकी वे उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

अन्तिम दिन रात्रि भोजन के बाद शाम को उन्होंने कैम्प फायर, संगीत और नृत्य का आनन्द लिया।

छात्रों नें अनुशासित तरीके और पूरी निष्ठा से ध्यान सत्र और अन्य गतिविधियों में भाग लिया। अगले दो दिन हमें दूसरे व तीसरे स्तर की कक्षा लेने का अवसर मिला। हमने कथा वाचन, व्याकरण, विलोम और विवरणात्मक शब्द खेल के माध्यम से

बताने पर ध्यान दिया। मानसिक यात्रा के माध्यम से बच्चों को उनकी द्रष्टि व समझ के अनुसारके लिये भी प्रेरित किया गया। अधिकतर बच्चे ग्रहणशील और सीखने

के इच्छुक थे। शिक्षक भी नये तरीकों को सीखने और लागू करने के लिये उत्सुक थे परन्तु अभिभावकों की माँग के अनुसार उन पर पाठयक्रम पूरा करने का भी दबाव भी था। हम तारा दीदी व अंजू दीदी को उनके साथ रहने का यह अवसर प्रदान करने के लिये बहुत बहुत धन्यवाद करते हैं!

केचला ट्रिप

रिपोर्ट पारुल दीदी (हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता)

आन्ध्र प्रदेश और उड़ीसा की सीमा पर स्थित तारा दीदी द्वारा आयोजित केचला की यह यात्रा एक विशेष यात्रा थी। यद्यपि तारा दीदी स्वंय अस्वस्थता के कारण इस में भाग नहीं ले पायीं।

हम सब अलग अलग आयु के 7 लोगों ने अपनी विज़िनागरम की ट्रेन यात्रा का आनन्द लिया और उसके पश्चात कार से कोलाब रिज़र्वायर तक गये जहाँ एक जलपोत हमें कबीले के बच्चों के स्कूल आरो विद्या मंदिर तक ले कर गया। सूर्य धीरे धीरे पर्वत के पीछे छुप गया और अँधेरा छाने लगा। जलपोत पर यह हमारी 40 मिनट की लम्बी यात्रा थी और इस दौरान लगभग पूरा समय बारिश होती रही। हम लोगों में से कोइ भी छाता लेकर नहीं आया था फिर भी जब तक हम अपने समय पर वहां पहुँचे, बारिश रूक चुकी थी। साँय लगभग 7:30 बजे हमारे किनारे तक पहुँचने तक पूरी तरह अँधेरा छा चुका था, यहाँ तक कि बिना टार्च की सहायता के हम अपने आगे की भूमि भी नहीं देख सकते थे। यह कबीले का क्षेत्र था और पूरी तरह आश्चर्यजनक रूप से अँधेरे और मौन में डूबा हुआ था। इतनी विशुद्ध शाति को भंग करने की किसी की इच्छा नहीं हुयी इसलिये कुछ भी बात ना करते हुए घुप्प अँधेरे में ही हम अपने गंतव्य पर पहुंच गये।

अपने सामान के साथ हमें काफी दूर चलना पड़ा। हम सब बस दोनों नाविकों के पदचिन्हों का ही अनुसरण करते रहे। अंततः एक दरवाजा दिखायी दिया जिस पर ताला लगा हुआ था। हम चिल्लाये, चीखे और एक स्वर में कई बार 'प्रांजल' 'प्रांजल' बुलाया। मोबाइल नेटवर्क ना होने के कारण हममें से कोइ भी उसे नहीं बता सकता था कि हम पहुँच गये हैं। अनवरत 25 घंटों की ट्रेन, रोड और जलयात्रा के उपरान्त हुयी थकान के कारण उत्पन्न हमारी घबराहट, बेचारगी और डर को अच्छी तरह समझा जा सकता है। लगभग 15 मिनट के बाद कोई हमारी तरफ टार्च लेकर आया। बड़ा दरवाजा खोल दिया गया और हम सबने चैन की साँस ली। वहाँ 2 मोटरसाइकिल देख कर हमें अत्यन्त प्रसन्नता हुयी और हमारे ग्रुप के बड़ी आयु के लोगों को उनके ठहरने के स्थान पर मोटर साइकिल से पहुँचा दिया गया।

सामान टिका कर और तरोताजा होकर हम सब रात्रि भोजन के लिये ले जाये गये।

भोजन के तुरन्त बाद मुझे फिर से बाइक पर ही मेरे रहने के स्थान पर पहुँचा दिया गया। मैं बहुत शान्त गहरी नींद सोयी।

सुबह मुर्गों की आवाज और रुद्राक्ष वृक्ष पर चिड़ियों की चहचहाट से मेरी नींद खुली। यह 9 मार्च, शुक्रवार का दिन था। प्राकृतिक सौन्दर्य से भरपूर, चारों तरफ जल और पर्वतों से घिरा हुआ, लाल मिटटी, पेड़ और हरियाली, सब कुछ ऑरोविल के प्रारम्भिक दिनों की याद दिला रहा था। और सबसे आश्चर्यजनक था कि यह सब एक व्यक्ति के स्वप्न, प्रयास, मेहनत और उन्नति की चाहत का परिणाम था। जहाँ पहले कुछ भी नहीं था, मेहनत, प्रेम और अथक प्रयास से अब दिवास्वप्न जैसा मोहक स्वर्ग का रूप ले चुका था। इस सबके लिये हमें प्रकृति, सहकर्मियों और उन अबोध आत्माओं के साथ सामंजस्य रख कर काम करना होता है जो भविष्य में हमारे देश को उन्नति की सही राह पर ले जायेगें।

यहाँ उद्यान में गुलाब, हिबिसकस की अनेक किस्में और सूर्यमुखी आदि की सुनियोजित क्यारियाँ थीं। सभी पौधे स्वस्थ थे। घास और सब्जी उगाने के लिये भी अलग से स्थान रखा गया था। इस जगह पवनचक्कियाँ भी थीं और सूर्य पैनल की सहायता से पूरे विद्यालय को प्रकाशित और उर्जायुक्त रखा गया था। ऑरो मीरा विद्या मंदिर के पास लगभग 78 एकड़ जमीन, एक फार्महाउस, अनाज के जुते हुए क्षेत्र, आम, अमरूद, काजू, केले और कई अन्य मौसमी फूल और फलों के बाग हैं।

स्कूल के बच्चों ने हवन के साथ स्कूल परिसर में हमारा स्वागत किया। श्लोकों के जप के साथ उन्होंने भगवान का आहवाहन किया। पूरा वातावरण बच्चों के जप से स्पंदित हो गया था। अग्नि के चारों ओर बैठे बड़े और छोटे सभी बच्चों में इतना अपनापन था मानों सभी एक ही परिवार से आये हों। हवन के बाद हम सब सभी बच्चों से बात करने और उन्हें कार्य करता हुआ देखने के लिये कक्षाओं में गये। कक्षायें काफी बड़ी और बड़ी खिड़कियों से काफी हवादार थीं। कक्षाओं को एक उँचे प्लेटफार्म पर बनाया

गया था जिससे बारिश का पानी कमरों में ना आये। पुस्तकालय में नर्सरी से लेकर उच्च शिक्षा के सभी विषयों की पुस्तकें तथा सभी आध्यात्मिक साहित्य उपलब्ध था जिससे हम सब अत्यन्त प्रभावित हुये। इन सब में

शिक्षकों का प्रेम और उनके उदार रूप से देने का भाव स्पष्ट प्रतीत होता था। कुछ बड़े बच्चे पूरी तरह अध्ययन में मग्न थे।

विद्यालय में कुछ दिल्ली के शिक्षक थे जबकि कुछ बड़ी कक्षाओं के बच्चे पढ़ाने में सहायता कर रहे थे। प्रांजल यहाँ मार्गदर्शन, सहायता और उत्साहवर्धन के लिये हमेशा उपस्थित रहते हैं। यह सब गुरू शिष्य परम्परा के अनुसार अनुशासन, आज्ञाकारिता, रूचि और उत्साह से बहुत सफलतापूर्वक चल रहा था। साँय 5 बजे, फुटबाल मैदान में बच्चों के शारिरिक प्रदर्शन की व्यवस्था की गयी। बच्चें तीन रंगों सफेद, नारंगी और हरे रंग की कतारों में खड़े थे। 20 से अधिक लड़के संगीत की विभिन्न धुनों पर एक लयबद्ध तरीके से अलग अलग शारिरिक प्रदर्शन कर रहे थे। यह सब अदभुत था। इसके बाद हमें हमारी कुर्सियों समेत बास्केटबाल कोर्ट ले जाया गया, जहाँ बच्चों ने एक्रोबेटिक्स, जिमनास्टिक्स, पिरामिड बनाना, रोलर स्केटिंग, एक पहिये की साइकिल पर विभिन्न करतब, अनेक गेंदों को एक साथ उछालना आदि अनेक करतब किये।

बच्चों ने आश्चर्यजनक रूप से एक घंटे तक एकाग्रता से अपनी गतिविधियों पर पूर्ण नियन्त्रण प्रदर्शित किया। सांय 7

बजे छात्रावास के ध्यानकक्ष में सामूहिक गतिविधियाँ थीं। बच्चों ने श्लोकों का जप किया और भजन गाये। यह सब दिल को छू लेने वाला था। लगभग 8 बजे रात्रि भोजन के उपरान्त हम अपने अपने आरामकक्ष में चले गये।

क्रमश:

युवा शिविर

रिपोर्ट: साक्षी ओबेराय, (हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता)

शिविर संख्या 616

अवधि: 29 अप्रैल से 5 मई 2018

स्थान: वन निवास, नैनीताल

प्रतिभागी स्कूल का नाम : श्री अरबिंदो अंतर्राष्ट्रीय स्कूल, हैदराबाद

इस शिविर में 15-17 आयु वर्ग के 14 लड़के, 29 लड़कियाँ 2 पुरुष और 3 महिला

शिक्षकों सहित 48 सदस्यों ने भाग लिया।

पहले दिन सांय 7 बजे उनका ध्यान सत्र था। आवश्यक फॉर्म भरने के बाद सुचेन्दु के साथ एक छोटा सा एक घंटे का सत्र था जो 5 मिनट के ध्यान के साथ समाप्त हुआ। रात्रिभोज के बाद8.30 बजे दिन की परिसमाप्ति हुयी।

अगले दिन सुबह 7.00 बजे एक घंटे के व्यायाम और योग के लिए सब योग ग्राउंड में इकट्ठे हुए। उस दिन नाश्ते के बाद अगले 4

दिन तक सब रॉक क्लाइंबिंग / स्कैम्बलिंग, रैपलिंग, नदी क्रॉसिंग के लिए तैयार थे, जिसका उन्होंने बहुत आनंद लिया। दोपहर के भोजन के बाद 2.30 बजे उन्होंने लैंड्स ऐंड्स, अगले दिन टिफिन टॉप, श्री अरबिंदो पीक और फिर नैना पीक के लिये ट्रैकिंग की। नैना पीक ट्रैक सुबह 7.30 बजे नाश्ते के तुरंत बाद शुरू किया गया। शाम के स्नैक्स के बाद उन्होंने संध्या 7 बजे सुखेन्दु के साथ ध्यान सत्र में पर भाग लिया और रात्रि 8

रात्रि का खाना खाया। तीसरे दिन वे सांय ट्रैकिंग के लिए गए। उस शाम भारी बारिश और तूफान के बावजूद युवा छात्रों ने पूरी तरह से भीगने का आनन्द लिया।

एक दिन उन्हें बाजार जाने की अनुमति मिली, जिसकी वे उत्सुकता से प्रतीक्षा कर रहे थे।

अन्तिम दिन रात्रि भोजन के बाद शाम को उन्होंने कैम्प फायर, संगीत और नृत्य का आनन्द लिया।

छात्रों नें अनुशासित तरीके और पूरी निष्ठा से ध्यान सत्र और अन्य गतिविधियों में भाग लिया गया।

युवा शिविर संख्या 614

अवधि: 18 अप्रैल से 22 अप्रैल 2018

स्थान: वननिवास नैनीताल

प्रतिभागी स्कूल का नाम : शिव नादर स्कूल, नौएडा

रिपोर्ट: हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता

इस शिविर में 9-14 आयु वर्ग के 28 लड़के, 2 7 लड़कियाँ 3 पुरुष और 8 महिला शिक्षकों सहित 66 सदस्यों ने भाग लिया।

छात्र सुबह 7 बजे सुबह अभ्यास और खेल शुरू करने के लिए तैयार थे। नाश्ते के बाद, वे रॉक क्लाइंबिंग/स्कैम्प्लिंग के लिए गये जिसका उन्होंने बहुत आनंद लिया। 2.30 बजे दोपहर के भोजन के बाद वे 'लैंड्स ऐंड्स', ट्रेक के लिये गए।

शाम के अल्पाहार के बाद, सांय 7 सुखेन्दु के साथ ध्यान के बाद 8 बजे रात का खाना खाया। अगले दिन छात्रों के लिए कार्यशालाएं आयोजित की गयीं। जयंत के साथ सभी ने चट्टानों की चढ़ाई और ट्रेकिंग सत्र में भाग लिया। सांय ध्यान सत्र भी उसी के द्वारा लिया गया।

पिक्चर गैलेरी युवा शिविर न 614-624: वननिवास, नैनीताल

रामगढ़ नैनीताल श्री अरविन्द आश्रम से इन्द्र धनुष का सौन्दर्य

दिल्ली आश्रम में योग

तारा दीदी का जन्मदिन

5 जुलाई 2017- को तारा दीदी का जन्मदिन बहुत उत्साह पूर्वक मनाया गया । प्रात:काल से ही आश्रम के प्रांगण में विभिन्न पौधे लगाने के साथ कार्यक्रम हुआ। संध्या 03:00 बजे भोजन कक्ष में तारा दीदी द्वारा औरोविल में श्री मां के साथ बिताये गये चित्रों की प्रस्तुति की गई। तारा दीदी ने केक काटा और सबकी प्रेमपूर्ण बधाईयों के बाद आश्रम के प्रांगण में पुन: विभिन्न पौधे लगाने के साथ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

सूर्योदय स्कूल

हिमालय की तलहटी में लम्बा रामगढ़ के एक छोटे से गाँव में स्थित सूर्योदय स्कूल

गाँव समुदाय के बच्चों के लिये एक प्राथमिक विद्यालय है। इनमें से अधिकतर बच्चे पहली पीढ़ी के शिक्षार्थी हैं। उनके माता-पिता गरीब हैं लेकिन उन्हें पढाने के लिए उत्सुक हैं

पिछले कुछ वर्षों से मधुबन श्री अरबिंदो आश्रम दिल्ली शाखा ने प्रत्येक बच्चे के लिए एक मुफ्त प्रगतिशील वातावरण में शिक्षक प्रशिक्षण सहायता की सुविधा प्रदान की है।

जो स्वयंसेवक इसमें सहायता करने के लिए तत्पर हैं वे आ सकते हैं और शिक्षण कैलेंडर का हिस्सा बन सकते हैं। हम दानदाताओं का भी स्वागत करते हैं जो शिक्षक के वेतन में सहयोग दे सकते हैं और इस प्रकार इस जीवंत अर्थपूर्ण पहाड़ी स्कूल परियोजना में सहायता कर सकते हैं।

रिपोर्ट: हिन्दी अनुवाद: रूपा गुप्ता

प्रेरणायें

मेरे लिये मधुबन केवल एक आश्रम नहीं है जहाँ मैं सिर्फ अपने योगा और ताई ची की कक्षायें लेता हूँ और फिर इसके बारे में भूल जाता हूँ। मेरे लिये मधुबन मेरा घर है, मेरा परिवार है जिस पर मैं विश्वास कर सकता हूँ। पिछले 25 वर्षों में मैंने भारत के अनेक प्रदेशों में असंख्य कक्षायें आयोजित की हैं लेकिन मधुबन उन सबमें सर्वोत्तम है। इसके बारे में सब कुछ ही बहुत सौन्दर्यपूर्ण है। कोइ भी यहाँ आकर स्तब्ध हो जाता है। यहाँ के कार्यकर्ता अपने अपने कार्य में अत्यन्त निपुण हैं। उनके लिये उनके सब काम एक कला के रूप में पूर्णता पाते हैं। मैं चाहता हूँ कि जब तक मैं जीवित हूँ अपनी वार्षिक कक्षायें यहाँ आयोजित करता रहूँ।

इस बार के भ्रमण के दौरान मुझे तारा दीदी को सुनने का सौभाग्य भी प्राप्त हुआ जो एक यादगार अनुभव बन गया। 82 वर्ष की अवस्था में भी उनमें कोइ शिथिलता नहीं है। वर्तमान में चल रहीं और आगे आने वाली अनेक परियोजनाओं के बारे में बताते हुए उनमें वही दृढ़ निश्चय, उत्साह और समाज के कमजोर वर्ग को उपर उठाने की मूलभूत निष्ठा दिखायी देती है।

अत्यन्त सक्रिय व्यक्तित्व अंजू दीदी से मिलना भी गौरव की बात है। इतने बड़े आश्रम के अनुशासनात्मक संचालन के पीछे उनकी निःस्वार्थ कर्म की ही प्रेरणा है।

सभी आश्रम कार्यकर्ताओं की सफलता के लिये मेरी बहुत बहुत शुभकामनायें।

विवेक मिस्त्री (हिन्दी अनुवादः रूपा गुप्ता)